

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेदः एक सरल परिचय

प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय



विजयकुमार शोविन्द्रराम हृसानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविंदराम हासानंद
4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006
दूरभाष : 23977216, 65360255
e-mail : ajayarya@vsnl.com
Website : www.vedicbooks.com

संस्करण : 2006

मूल्य : 35 रुपये

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

समर्पण

बालसखा (इण्डियन प्रेस प्रयाग)

के विगत सम्पादक

स्व० ठाकुर श्रीनाथसिंह

की स्मृति में—

—यह लेखक अपने कैशोर्य काल में

जिन्हें साहित्य-जगत् का 'हीरो' समझता था

तथा

उनके द्वारा सम्पादित बालसखा का
नियमित पाठक होने के कारण जिसमें

लेखन के प्रति रुचि जागृत हुई ।

तब उसको भी क्या पता था कि

उसका लेखन एक दिन

वैदिक साहित्य की ओर उन्मुख होगा ।



विषय-क्रम

अध्याय १. ऋग्वेद संहिता एक सामान्य परिचय	५
अध्याय २. ऋग्वेद में देवता तत्त्व : उपास्य एक नाम अनेक	१२
अध्याय ३. ऋग्वेद में दार्शनिक सन्दर्भ	४८
अध्याय ४. ऋग्वेदीय आचार-मीमांसा	६२
अध्याय ५. ऋग्वेद के सामाजिक सरोकार	६८
अध्याय ६. ऋग्वेद और पर्यावरण	८४
अध्याय ७. ऋग्वेद : प्रकीर्ण विषय	९०
अध्याय ८. ऋग्वेद में आये कथित आख्यानों की वास्तविकता	९६
अध्याय ९. ऋग्वेद का काव्य सौष्ठव	१०८
अध्याय १०. मानवता को ऋग्वेद का दिव्य सन्देश	११४
परिशिष्ट : सन्दर्भग्रन्थ तथा सहायक ग्रन्थ	११६

अध्याय १

ऋग्वेद-संहिता : एक सामान्य परिचय

प्रो० मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय का प्राचीनतम ग्रन्थ है ।^१ भारत की धार्मिक परम्परा चारों वेदों को परमात्मा का अनादि ज्ञान मानती है जो सृष्टि के आरम्भ में मानव जाति के हितार्थ ऋषियों के माध्यम से दिया गया था। महाभारत के अनुसार परमात्मा ने जिस अपौरुषेय वाक् का सृजन किया वह आदि और अन्त से रहित है । यही वेदमयी दिव्य वाक् है जिससे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है—

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।

आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

शान्तिपर्व अ० २२४।५५

दयानन्द सरस्वती ने वेदों की अन्तःसाक्षी से चारों संहिताओं का परमात्मा प्रदत्त होना माना है । स्वरचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उन्होंने यजुर्वेद के मन्त्र—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहृत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (३।८७)

तथा अथर्ववेद के

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।

सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्ग्निरसो मुखम् ॥

(१०।७।२०)

इस मन्त्र को उद्धृत कर ऋगादि चारों वेदों का ईश्वर-कर्तृत्व सिद्ध किया है । इस प्रसंग में उन्होंने शतपथ ब्राह्मण का निम्न वाक्य उद्धृत किया—एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्ग्निरसः ॥ (१४।५।४।१०) इसका अर्थ करते हुए वे लिखते हैं—

“याज्ञवल्क्य महाविद्वान्, जो महर्षि हुए हैं वे अपनी पण्डिता स्त्री मैत्रेयी को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि ! जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है उस से ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व, ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं ।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका : वेदोत्पत्तिविषय)

भारतीय धर्मपरम्परा वेदों का प्रादुर्भाव काल सृष्टि के आरम्भ में मानती है जब कि पश्चिमी वेदज्ञ उनका रचना-काल ईसा से कुछ शताब्दियों पूर्व तक ले जाते हैं । वस्तुतः आज तक वेदों के प्रादुर्भाव काल (या अन्यों के दृष्टि में रचना-काल) को लेकर पौरस्त्य तथा पाश्चात्य विद्वानों में सहमति नहीं बनी है । भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इनकी रचना का अपनी अपनी दृष्टि से भिन्न-भिन्न समय बताया तथा अपने से भिन्न विद्वानों के मत का खण्डन किया,^३ तथापि वे इस बात से सहमत हैं कि वेदों (या ऋग्वेद) से अधिक पुराना कोई ग्रन्थ इस धराधाम पर नहीं देखा गया । मैक्समूलर ने ऋग्वेद के सायण भाष्य का सम्पादन करते समय उसकी महिमा में जो श्लोक लिखा वह वस्तुतः ‘वाल्मीकीय रामायण’ की प्रशस्ति का ही श्लोक था जिसे उन्होंने परिवर्तित रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।

तावद् ऋग्वेदमहिमा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

जब तक इस धराधाम पर पर्वत तथा नदियां रहेंगी तब तक ऋग्वेद की महिमा लोक में प्रचलित रहेगी । जहां तक भारत के धार्मिक तथा दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रश्न है, वे सभी वेदों के गौरव तथा उसकी सर्वोपरि प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं । निष्पक्ष पश्चिमी विद्वान् भी वेदों में वर्णित विषयों की महत्ता तथा मानव समाज के लिए उनकी उपयोगिता को निर्विवाद स्वीकार करते हैं ।

ऋग्वेद का स्वरूप तथा आकार

चारों वेद-संहिताओं में आकार की दृष्टि से ऋग्वेद सब से बड़ा है। यह दस मण्डलों, १०२८ सूक्तों तथा १०५८९ मन्त्रों में समाहित है। ऋग्वेदीय ऋचाओं की यह संख्या स्वामी दयानन्द के अनुसार है। अन्यों के मतानुसार ऋग्वेद में १०५५२ मन्त्र हैं। इन मन्त्रों को दो क्रमों में रखा गया है। प्रथम है, अष्टक, अध्याय और वर्ग, दूसरा मण्डल, अनुवाक तथा सूक्त का क्रम है। दयानन्द भाष्य के आरम्भ में तालिकाएं बना कर दसों मण्डलों की मन्त्र संख्या निम्न प्रकार दी गई है—

प्रथम मण्डल	१९७६	मन्त्र
द्वितीय मण्डल	४२९	„
तृतीय मण्डल	६१७	„
चतुर्थ मण्डल	५८९	„
पञ्चम मण्डल	७२७	„
षष्ठ मण्डल	७६५	„
सप्तम मण्डल	८४१	„
अष्टम मण्डल	१७२६	„
नवम मण्डल	१०९७	„
दशम मण्डल	१७५४	„
<hr/>		
	१०५२१	„

इन तालिकाओं में निर्दिष्ट मन्त्रों की समग्र गणना १०५२१ है। ऋग्वेद के समग्र मन्त्रों की संख्या को लेकर स्वामी स्वतन्त्रानन्द,^३ पं० युधिष्ठिर मीमांसक^४ तथा आचार्य विश्वश्रवा^५ ने अपनी अपनी दृष्टि से विचार किया है।

वेदों के आविर्भाव काल के तुरन्त बाद तक के समय में मन्त्रों का अर्थ ऋषिजन अपनी आर्ष प्रतिभा तथा परमात्मा प्रदत्त मेधा बुद्धि की सहायता से करते थे। बाद में जब मानवी प्रतिभा का हास होने लगा तो ऋषि कोटि के लोगों ने वेदार्थ को सुलभ करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन किया।

प्रत्येक वेद-संहिता के साथ किसी न किसी ब्राह्मण ग्रन्थ का नाम जुड़ा है। ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद का ब्राह्मण है जिसके रचयिता ऐतरेय महीदास थे।^{१५}

बहुत बाद में वेदों के मर्म को सर्वसाधारण तक पहुंचाने के लिए विभिन्न विद्वानों ने भाष्यों की रचना की। पं० भगवद्गत्त के अनुसार स्कन्द स्वामी से लेकर दयानन्द सरस्वती तक निम्न विद्वानों ने ऋग्वेद पर भाष्य रचना की है—

१. स्कन्द स्वामी, २. नारायण, ३. उद्गीथ, ४. हस्तामलक, ५. वेंकटमाधव, ६. भट्टगोविन्द, ७. लक्ष्मण, ८. धानुष्क यज्वा, ९. आनन्दतीर्थ, १०. आत्मानन्द, ११. सायण, १२. रावण, १३. मुदगल, १४. चतुर्वेद स्वामी, १५. भरत स्वामी, १६. वरदराज, १७. देवस्वामी, १८. भट्टभास्कर, १९. उव्वट, २०. हरदत्त, २१. सुदर्शन सूरि, २२. दयानन्द सरस्वती। इनका काल वि० सं० ६८७ से वि० सं० १९४० (१८८३ ई०) पर्यन्त है।^{१६} आधुनिक काल में अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद पर भाष्य लेखन किया है।^{१७}

दयानन्द पूर्व के ऋग्वेद भाष्यकारों का मुख्य लक्ष्य इस ग्रन्थ का याज्ञिक व्यवस्थाओं के अनुरूप भाष्य करने का था। उनकी मूल धारणा भी यही थी कि वेद संहिताएं कर्मकाण्ड प्रतिपादक हैं और इनके मन्त्रों का विभिन्न यज्ञ-यागों में जो विनियोग किया गया है वही मन्त्रों का मुख्य विषय है। दयानन्द सरस्वती इस धारणा से सर्वांश में सहमत नहीं हैं। वे यह तो मानते हैं कि वेदों में अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों का उल्लेख है तथापि वेदों का मुख्य उद्देश्य वेदों में वर्णित मानवोपयोगी ज्ञान तथा शिक्षाओं का विस्तृत आकलन करना है। दयानन्द ने वेदों का मुख्यतः दो प्रकार का अर्थ किया है—पारमार्थिक तथा व्यावहारिक।^{१८} जब वे वेदों के पारमार्थिक अर्थ की बात करते हैं तो उनका आशय वेदों में विद्यमान आध्यात्मिक ज्ञान से होता है। वे वेदों में ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि विद्या, जन्म-मरण, पुनर्जन्म, मोक्षादि दार्शनिक

प्रश्नों का समाधान तलाशते हैं। मुण्डकोपनिषद् की उक्ति का सहारा लेकर स्वामी दयानन्द ने वेदों में अपरा तथा परा विद्याओं की अवस्थिति मानी है। उनकी दृष्टि में अपरा विद्या वह है जिसमें पृथ्वी तथा तृण से आरम्भ कर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान समाविष्ट है। उनके विचार में परा विद्या वह है जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म का ज्ञान होता है। अन्ततः वे वेदों का चरम तात्पर्य परमात्मा के विवेचन में मानते हैं—“एवमेव सर्वेषां वेदानामीश्वरे मुख्येऽर्थे मुख्यं तात्पर्यमस्ति । यत्प्राप्ति-प्रयोजना एव सर्वं उपदेशा सन्ति ।” (ऋ० भा० भूमिका वेद-विषय-विचार) इसका भाषार्थ इस प्रकार है—“इससे क्या आया कि वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादन करने में है।”

पूर्व काल के भाष्यकर्त्ताओं से अपना मतभेद स्वामी दयानन्द ने इस प्रकार बताया है—‘यत् सायणाचार्येण वेदानां परममर्थऽ विज्ञाय सर्ववेदः क्रियाकाण्डतत्परासन्तीत्युक्तम् तदन्यथाऽस्ति ।’^{१०} सायणाचार्य आदि मध्यकालीन भाष्यकारों ने वेदों के परम (सर्वोत्कृष्ट) अर्थ को न जानकर उनका जो क्रियाकाण्डपरक अर्थ किया वह उचित नहीं है। उनकी दृष्टि में यदि रावण, उवट, सायण, महीधर आदि के भाष्य मात्र कर्मकाण्ड प्रतिपादक होने से अमान्य हैं तो उसी प्रकार यूरोपीय विद्वानों के वेदार्थ को भी अधिक मान्यता नहीं दी जा सकती क्योंकि इनमें से अधिकांश ने या तो सायणादि का ही अनुकरण किया है अथवा इन ग्रन्थों को ऐतिहासिक दृष्टि से परखा है जो ठीक नहीं है।

ऋग्वेद पर आधुनिक वेदार्थविदों ने नाना आक्षेप किये हैं। उदाहरणार्थ इस वेद का दूसरे से लेकर नवें मण्डल तक का अंश प्राचीन है जबकि प्रथम और दशम मण्डल को ये नवीन मानते हैं।^{११} इन वेदज्ञों की यह तो सर्वसम्मत धारणा है कि वेदों में एकेश्वरवाद न होकर बहुदेवतावाद का प्रतिपादन है तथापि उन्होंने अन्ततः यह माना कि वेदोक्त ये देवता एक

परमात्मा के ही प्रतीक हैं। एक परमात्मा को ही अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि नामों से प्रस्तुत किया गया है। प्रो० मैक्समूलर ने वेदों को स्पष्टतया बहुदेववादी भी नहीं माना अपितु उसने एक नये पद 'Henotheism' का आविष्कार कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि जिन मन्त्रों या सूक्तों में जिस जिस देवता का स्तवन किया गया है वहां वहां उसे ही सर्वोपरि मान लिया गया है, इसलिए वेदों को न तो स्पष्टतः एकेश्वर प्रतिपादक कहा जा सकता है और न बहुदेववादी। इसके विपरीत दयानन्द सरस्वती ने 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'^{१२} जैसे मन्त्रों की विद्यमानता के कारण वेदों को स्पष्टरूप से एक ईश्वर का निरूपक बताया। निरुक्त भी इस मत की पुष्टि करता है।^{१३}

ऋग्वेद का बहुलांश विभिन्न देवताओं (ये सब एक परमात्मा के ही ज्ञापक हैं।) की स्तुति में प्रणीत मन्त्रों के रूप में है। तथापि यत्र तत्र दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा प्रकृति एवं पर्यावरण से सम्बन्धित मन्त्र भी आये हैं। हम प्रारम्भ में उन मन्त्रों का विचार करेंगे जो विभिन्न देवताओं की स्तुति रूप में होने पर भी परोक्षतः उन्हें एक, अद्वितीय परमात्मा की महिमा का द्योतक बताते हैं। ऋग्वेद का मुख्य भाग भी इन देवताओं के स्तुतिपरक सूक्तों में ही समाविष्ट है।

पाद-टिप्पणियां—

१. Rigveda is the oldest book in the library of the world.
२. पं० रघुनन्दन शर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वैदिक सम्पत्ति में वेदों के रचनाकाल के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के मत की आलोचना के साथ साथ बालगंगाधर तिलक तथा अविनाशचन्द्र दास आदि भारतीय चिन्तकों के मत का भी खण्डन किया है।
३. वेदों की इयत्ता—ज्ञानचन्द्र आर्य हीरादेवी ट्रस्ट दिल्ली (प्रकाशक)
४. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—आर्य साहित्यमण्डल अजमेर २००६ वि०

५. आचार्य विश्वश्रवा—ऋग्वेदमहाभाष्यम् की भूमिका में १९७७ ई०

६. ऐतरेय ब्राह्मण का शब्दशः हिन्दी भाषान्तर पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने किया था जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से २००६ वि० में छपा ।

७. वेदों के भाष्यकार : पं० भगवद्गत जी—डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर के शोधविभाग द्वारा १९३१ ई० में प्रकाशित—प्रथम संस्करण ।

८. स्वामी दयानन्द की वेदार्थ शैली का अनुसरण करते हुए पं० आर्य मुनि तथा पं० शिवशंकर शर्मा ने ऋग्वेद के कुछ अंशों पर भाष्य लिखा । स्वामी ब्रह्ममुनि ने दशम मण्डल पर दो खण्डों में भाष्य लेखन किया । दयानन्द से भिन्न विचारधारा वालों में पं० रामगोविन्द त्रिवेदी का ऋग्वेद भाष्य सायणमतानुसारी है । पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने सम्पूर्ण ऋग्वेद पर हिन्दी भाष्य लिखा है ।

९. “अथात्र यस्य यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिक-व्यावहारिक-योद्धयोरर्थयोः श्लेषालंकारादिना सप्रमाणः सम्भवोऽस्ति, तस्य तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्येते । परन्तु नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति ।” ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका : प्रतिज्ञाविषय ।

१०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—भाष्यकरणशंकासमाधानादिविषयः

११. ऋग्वेद पर किये गये इस प्रकार के आक्षेपों का समाधान पं० शिवपूजनसिंह कुशवाहा ने अपनी पुस्तक ‘ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराधात’ में किया है—रुद्रग्रन्थमाला-७. २००७ वि०

१२. ऋग्वेद १।१६४।४६

१३. महाभाग्यादेवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते । एकस्यात्मनो देवा: प्रत्यङ्गनि भवन्ति । निरुक्त अ० ६

अध्याय २

ऋग्वेद में देवता तत्त्व : उपास्य एक : नाम अनेक

जैसा कि हम विषय प्रवेश में संकेत दे चुके हैं कि ऋग्वेदादि सभी वेदों का परम प्रयोजन एक अद्वितीय परमात्मा का प्रतिपादन करना है। एक अद्वितीय पराशक्ति परमात्मा को उपासक गण उसके ज्ञाना गुणानुसार विभिन्न नामों से पुकारते हैं तथापि इन नाना स्तुतिमूलक मन्त्रों में उपासक का लक्ष्य अपने परमाराध्य परमेश्वर का ही स्तवन करना होता है। वेदों में उसी सर्वोच्च शक्तिमान् ईश्वर को जिन नामों से पुकारा गया उन्हें मोटे तौर पर देवता कहा गया है। वैदिक साहित्य में ‘देवता’ पद का प्रयोग एक अन्य अर्थ में भी होता है। यहाँ मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय की संज्ञा ‘देवता’ है।^१ अतः यदि मन्त्र में परमात्मा से भिन्न किसी अन्य वस्तु, पदार्थ या भाव का उल्लेख है तो वह इस मन्त्र का देवता कहलायेगा। तथापि मनुष्यों के लिए आराध्य और उपास्य एक परमात्मा ही है जिसे वेद-मन्त्रों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण^२ आदि भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है।

ध्यातव्य है कि वेदों में सर्वाधिक मन्त्र अग्नि और इन्द्र को सम्बोधित हैं। कैसी विडम्बना है कि परमात्मा के वाचक इन नामों को पौराणिक काल में नितान्त साधारण तथा गौण देवता मान लिया गया। यहाँ तक कि सर्वेश्वर इन्द्र को भी नाना लांछनों तथा अपशब्दों से विभूषित कर उसे निन्दा तथा जुगुप्सा का पात्र बनाया गया। वैदिक देवताओं के इस युग में पराभव की यह लज्जाजनक कहानी विवेचन के लिए पृथक् स्थान मांगती है।

जैसा कि हम देख चुके हैं ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्रादि देवताओं को प्रधानता देकर अनेक मन्त्र संकलित किये गये हैं। यहाँ हम इन देवताओं को सम्बोधित करतिपय ऋग्वेदीय मन्त्रों पर विचार करेंगे। प्रकारान्तर से यह देव स्तुति परमात्मा का ही स्तवन है।

(१) अग्नि देवता के मन्त्र

ऋग्वेद का आरम्भ 'अग्नि' संज्ञक परमात्मा के स्तवन से होता है। प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के सभी नौ मन्त्रों में अग्नि की स्तुति की गई है—

ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र—

**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥**

यहाँ अग्नि नाम वाले परमात्मा को हमारा हितसाधक पुरोहित, 'यज्ञ' नाम वाले श्रेष्ठ कर्मों का देव तथा ऋत्विज्, (ऋतु ऋतु में उपासना करने के योग्य) और नाना मनोहर रत्नों का धारक बताया है। भाष्यरम्भ में स्वामी दयानन्द ने 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं' (ऋ ११६४।४६) तथा 'तदेवाग्नि-स्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः' (यजु० ३२।१) इन दो मन्त्रों के प्रमाणों से अग्नि शब्द को सच्चिदानन्दादि लक्षणों वाले ब्रह्म का बोधक सिद्ध किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त, उपनिषद् तथा मनुस्मृति आदि शास्त्रों के अनेक प्रमाण भी दिये तथा इनसे अग्नि का परमात्मा अर्थ लेना सिद्ध किया।*

ऋग्वेद के इस आदिम सूक्त के अन्य मन्त्र भी अग्नि संज्ञक परमात्मा की भक्ति से आपूरित हैं। द्वितीय मन्त्र में अग्नि को प्राचीन एवं नवीन ऋषियों (मन्त्रद्रष्टा तथा धर्म के साक्षात्कर्ता) द्वारा स्तुत कहा गया है।^१ स्वामी दयानन्द ने मन्त्रोक्त ऋषि का अर्थ—प्राण, मन्त्रार्थवेत्ता तथा तर्क किया है जो निरुक्त सम्मत है।

इस सूक्त के कतिपय अन्य मन्त्रों में ईश्वरभक्ति की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। यथा—

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ (११६)

हे सर्वमित्र परमेश्वर (अग्नि) आप अपने भक्त के लिए निश्चय ही भद्र (कल्याण) करने वाले हो, यह आपका सत्य व्रत ही है। इसी परमात्मा का प्रातः सायं हम स्तवन तथा भजन करें। वही हमारे नमस्कार का विषय है—

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ॥ (११७)

परमात्मा हमारे लिए पिता तुल्य सुखदायक तथा शोभन ज्ञान का दाता है। हम स्वकल्याण के लिए उसे पुकारते हैं—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।

सचस्वा नः स्वस्तये ॥ (११९)

उपर्युक्त मन्त्र यहां स्थालीपुलाक न्याय से चर्चित किये गये हैं, अन्यथा ऋग्वेद के सहस्रों मन्त्र अग्नि की नानाविध स्तुतियों में कहे गये हैं। प्रथम मण्डल के १२वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में ‘अग्नि’ को देवताओं का दूत कहकर पुकारा गया है। जैसे दूत हमारे सन्देशवाहक का कार्य करता है उसी प्रकार परमात्मा अग्नि रूपी दूत नाना उत्तम गुण, कर्मों का संवाहक बन कर हमारे यज्ञ रूपी परोपकार कर्मों का फलदाता बनता है—

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ (११२१)

इसी प्रकार १३११ में अग्नि को प्रथम अंगिरा ऋषि (अन्तर्यामी) तथा सर्वद्रष्टा) कहा तथा उसे ही देवसंज्ञक विद्वानों का कल्याणकारी सखा (देवानामभवः शिवः सखा) बताया ।^६

पापनाशक अग्नि—

प्रथम मण्डल के ९७वें सूक्त के सभी आठ मन्त्र ‘अप

नः शोशुचदधम्' की टेक से समाप्त होते हैं। इन मन्त्रों में अग्नि देव से रोग एवं आलस्य रूपी पाप को दूर करने की प्रार्थना की गई है। दयानन्द भाष्य में मन, वाणी तथा शरीर जन्य पापों से भक्त को दूर करने का अनुरोध किया गया है। प्रथम मण्डल के १८९ वें सूक्त का प्रथम मन्त्र अग्नि देवता के प्रति नमस्कार निवेदन का मन्त्र है। इसे दयानन्द सरस्वती ने स्वरचित ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना प्रकरण के अन्तिम नमस्कार मन्त्र के रूप में विनियुक्त किया है।^{१०} स्वप्रकाश स्वरूप परमात्मा से भक्तों की विनय है—हे अग्निदेव, आप हमें सुपथ की ओर ले जायें। स्वामी दयानन्द 'सुपथ' का अर्थ 'आप्त लोगों का धर्मयुक्त मार्ग' करते हैं। सर्वज्ञ देव से प्रार्थना करने का एक स्वारस्य यह भी है कि वह हमारे सम्पूर्ण प्रज्ञा अर्थात् उत्तम कर्मों को जानने वाला है। उससे पाप रूप दुष्कर्मों से हमें बचाने तथा उत्तम कर्मों को प्राप्त कराने की प्रार्थना की गई है तथा बार-बार (भूयिष्ठ) उसी अग्निदेव के प्रति प्रणाम निवेदन किया गया है।

यज्ञाग्नि का उल्लेख—

अग्नि को भौतिक अग्नि (Fire) का वाचक मान कर कतिपय मन्त्रों से अग्निहोत्र के देवता अग्नि का अर्थ लेना भी समीचीन है। द्वितीय मण्डल के दूसरे सूक्त का प्रथम मन्त्र यज्ञवेदी में प्रज्वलित जातवेदस् अग्नि को हविष् (उत्तम यज्ञीय पदार्थ) तथा विस्तृत वाणी के द्वारा बढ़ाने की बात कही गई है।^{११} यज्ञ में जहां हवि (होमने योग्य पदार्थ) की आहुति दी जाती है वहां वेदमन्त्रों की प्रशस्त वाणी का उच्चारण कर यज्ञ कर्म की विशिष्टताएं भी बताई जाती हैं। पञ्चम मण्डल के पञ्चम सूक्त का प्रथम मन्त्र भौतिक यज्ञपरक है—

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।

अग्नये जातवेदसे ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसे यज्ञकुण्ड में समिधा-

धान की क्रिया में विनियुक्त किया है। जातवेदस् अग्नि के लिए यजमान सुशोधित तथा तप्त घृत की वेदी में आहुति देता है।

छठे मण्डल के १६वें सूक्त का प्रथम अग्नि देवता के लिए उक्त (कहा गया) यह मन्त्र जितना सरल है उतना ही प्रेरक—

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।

देवेभिर्मानुषे जने ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अत्यन्त सरल संस्कृत में मन्त्र का इस प्रकार अन्वय किया है—“हे अग्ने ! यतस्त्वं यज्ञानां होता (विश्वेषां हितोऽसि) तस्माद्देवेभिर्मानुषे जने प्रेरको भव ।”

हे जगदीश, जिस कारण आप सबके हितकारी तथा श्रेष्ठ कर्मी (यज्ञ) के विधाता हैं, आप सभी देवसंज्ञक विद्वानों तथा सामान्य जनों के प्रेरक बनें। उन्हें उत्तम कर्म करने की प्रेरणा दें।

इसी १६वें सूक्त का ११वां मन्त्र अग्निहोत्र विषयक है जिसमें उत्तम समिधाओं तथा घृत से यज्ञाग्नि को बढ़ाने का संकेत है—

तं त्वा समिद्धिरङ्ग्नो घृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छोचा यविष्ट्य ॥

सर्वरक्षक अग्नि देव को भक्तगण अपनी रक्षा के लिए नाना प्रकार से पुकारते हैं—

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।

निष्कर्ष—यहां हमने संकेत मात्र से अग्नि को सम्बोधित कुछ मन्त्रों के अर्थ वैशिष्ट्य को प्रस्तुत किया है। अग्नि देव के इस विवेचन को समुद्र में से एक बूंद निकालने के तुल्य कहा जा सकता है।

(२) इन्द्रदेवता का स्तवन

अग्नि की भाँति सर्वैश्वर्यवान्, महाबलवान्, सर्व शासक
 इन्द्र परमात्मा की स्तुति के मन्त्रों की संख्या भी हजारों में
 है। प्रसंगानुसार तथा सन्दर्भ की मांग से इन्द्र के परमात्मा से
 भिन्न आत्मा, राजा, शासक, सेनापति आदि अर्थ भी किये जा
 सकते हैं। यहां इन्द्र को सम्बोधित कुछ मन्त्रों को व्याख्या
 सहित प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथम मण्डल के ५वें सूक्त
 का प्रथम मन्त्र भक्तजनों को सर्वैश्वर इन्द्र के गुणानुवाद में रत
 रहने की प्रेरणा देता है—

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्रगायत ।

सखाय स्तोमवाहसः ।

परमात्मा के स्तुति समूहों को धारण करने वाले हे
 भक्तजन, आप स्थिर होकर परमैश्वर्यवान् इन्द्र के गुणों का
 गान करें। परमात्मा के गुणों की चर्चा में मन लगायें तथा उसी
 के उपदेशों को सुनों तथा अन्यों को सुनायें।

मधुच्छन्दा ऋषि से दृष्ट निम्न मन्त्र गायत्री छन्द में है—

युज्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ । ६ । १

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में इस मन्त्र
 को प्रो० मैक्समूलर की वेद विषयक सीमित योग्यता का
 आकलन करते हुए प्रस्तुत किया है। वहां वे लिखते हैं—“मोक्षमूलर
 साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख
 कर मुझ को विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर-
 उधर आर्यावर्तीय लोगों की की हुई टीका देख कर कुछ-कुछ
 यथा-तथा लिखा है।”^९ अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने
 उपर्युक्त मन्त्र के मैक्समूलर कृत अर्थ की आलोचना की तथा
 बताया कि मन्त्र गत ‘ब्रध्न’ का वास्तविक अर्थ परमात्मा है
 जबकि जर्मन प्रोफेसर ने इसका अर्थ ‘घोड़ा’ किया है। वे प्रो०
 मैक्समूलर की तुलना में सायण द्वारा इस पद का अर्थ ‘सूर्य’
 करने को अधिक प्रशस्त मानते हैं। ऋग्वेद-भाष्य में प्रस्तुत

मन्त्र के संस्कृत भावार्थ में स्वामी जी ने जो लिखा उसका हिन्दी सारांश इस प्रकार है—“ईश्वर उपदेश देता है—जो लोग विद्या सम्पादन में उद्यत हैं उन्हें ही सर्व सुख प्राप्त होते हैं। इसलिए विद्वानों को उचित है कि वे पृथिव्यादि सभी पदार्थों का यथोचित उपयोग कर सब प्राणियों को सुखी करें।” (ऋग्वेद भाष्य खण्ड १)

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल का पन्द्रह मन्त्रों का १२वां सूक्त इन्द्र का अत्यन्त उदात्त स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। सुधी विद्वानों ने अनेकत्र इस सूक्त की भावप्रधान शैली में व्याख्या की है जब कि सायण का अनुसरण करने वाले विद्वानों ने इस सूक्त के मूल में एक काल्पनिक कथा के स्रोत को देख कर मन्त्रगत उदात्त भावों का सत्यानाश कर दिया है। सायण ने जिस स्रोत से इस उपाख्यान के कथानक को लिया वह अपने आप में नितान्त ऊलजलूल तथा ऊटपटांग है जिसका सिर पैर कुछ समझ में नहीं आता।^{१३} हम इसकी आलोचना में विस्तार से न जाकर मन्त्रगत इन्द्रविषयक कतिपय श्रेष्ठ उक्तियों को बिन्दुवार प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. वह इन्द्र परमात्मा आरम्भ से ही (सदा ही) दिव्य गुण वाले पदार्थों और विद्या-बुद्धि सम्पन्न विद्वानों को विभूषित करता रहा है। (२१२१)
२. उसी सर्वसामर्थ्य वाले इन्द्र ने पृथ्वी, पर्वत तथा अन्तरिक्षादि लोकों को स्वशक्ति से सम्पूर्ण धारण किया है। (२१२१२)
३. आकाशस्थ मेघों को छिन्न-भिन्न कर वह वर्षा का हेतु बनता है। (२१२१३)
४. उसी इन्द्र ने विश्व ब्रह्माण्ड को सुष्टुरीत्या धारण किया है। (२१२१४)
५. उस परमात्मा को लेकर साधारण जन नाना प्रकार का तर्क वितर्क करते हैं। कई लोग उसके स्थान को पूछते हैं (वह कहां रहता है) तो अन्य उसके अस्तित्व को लेकर शंका करते हैं, किन्तु वह ईश्वर सर्वाधार होने के

कारण सर्वत्र है और हमारी श्रद्धा का सदा पात्र है ।
(२१२१५)

६. उस इन्द्र ने ही अश्वों (विद्युत) तथा गायों (किरणों) को उत्पन्न किया । मनुष्यों द्वारा बसाये ग्राम तथा उनके आवागमन में सहायक रथादि यान उस इन्द्र द्वारा ही शासित हैं । उसी ने सूर्य मण्डल तथा उषा (प्रभातकाल) को उत्पन्न किया है । वही जलों को प्राप्त कराने वाला (अपां नेता) है । (२१२१७)
७. इन्द्र सभी को समान रूप से मान्य है । शत्रु और मित्र उसे समान रूप से पुकारते हैं । एक ही यान (रथ) पर विराजमान भिन्न-भिन्न रुचियों और मनःस्थितियों वाले लोग अपने-अपने ढंग से उसी को पुकारते हैं । वह सब का सांझा उपास्य देव है । (२१२१८)
८. उस शक्तिशाली इन्द्र की सहायता के बिना जीवन-संग्राम में लोगों को विजय प्राप्त नहीं होती । द्वन्द्युद्धों तथा देवासुर-संग्रामों में योद्धागण स्वरक्षा के लिए उसे ही पुकारते हैं । वह विश्व का प्रतिमान है तथा स्वयं को अविचल मानने वालों को भी चलायमान करने वाला है । स्थिर को अस्थिर करना उसके लिए सम्भव है । (२१२१९)
९. सभी लोक (पृथ्वी तथा द्युलोक) जिसे नमन करते हैं, जिसके महान् बल के आगे पर्वत भी भय मानते हैं, स्वयं के आनन्द रस का पान करने वाला वह 'सोमपा' इन्द्र दुष्टदलन में तत्पर है । वह वज्रहस्त होकर दुष्टों का पराभव करता है । (२१२१३)

सर्वशक्तिमान् इन्द्र का आत्मकथन

चतुर्थ मण्डल के २६वें सूक्त में परमात्मा इन्द्र स्वशक्तियों का आत्मकथन की शैली में परिचय देता है । प्रथम मन्त्र है—
अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यूञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥

मैं मनु (सर्वविद्या विधायक) हूँ। मैं ही सर्वप्रकाशक सूर्य तथा सर्व सृष्टि में विद्यमान कक्षीवान् हूँ। मुझे मन्त्रार्थवेत्ता ऋषि समझो। मैं ही मेंधावी (विप्र) हूँ। सबके हित की कामना करने वाला उशना तथा सर्वशास्त्रवित् (कवि) मैं ही हूँ।

इसी सूक्त में दूसरे मन्त्र में परमात्मा की निम्न घोषणा को देखें—

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मत्यर्य ॥४।२६।२

मैंने यह भूमि धर्मानुसार जीवन यापन करने वाले आर्य नाम वाले शिष्ट जनों को सौंपी है। ऐसे आर्योचितशील गुण सम्पन्न भद्र जनों को ही पृथ्वी पर शासन करने का अधिकार है। दानशील मानवों के लिए परमात्मा की दयावृष्टि सदा होती है।

इन्द्र सर्वोपरि है। उसके तुल्य या उससे बड़ा कोई नहीं—

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।

नकिरेवा यथा त्वम् ॥ ४।३०।१

हे वृत्र हन्ता इन्द्र (दुष्ट शत्रुनाशक परमात्मा) आपसे बढ़ कर कोई नहीं, आपसे ज्येष्ठ भी कोई नहीं, ऐसा भी कोई दिखाई नहीं देता जो आपके तुल्य हो।

इन्द्र के लिए गान—

स्वामी दयानन्द ने जिन वेद मन्त्रों (४।३१।१, २, ३) का महावामदेव्यगान^{१३} में विनियोग किया, उनका द्रष्टा ऋषि वामदेव है। दयानन्द भाष्य में इनका राजनीतिपरक अर्थ किया है। प्रत्येक यज्ञ तथा संस्कार के अन्त में इन मन्त्रों का गान किया जाना चाहिए।

हितकारी सखा इन्द्र का उपदेश

जीवात्मा का शुभ चिन्तक मित्र परमात्मा है। वह इन्द्र

परमात्मा अपने निकटतम मित्र जीव को उपदेश देता है—

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुकथा च शंसत॥
(८।१।१)

हे मित्रो, तुम परमात्मा से भिन्न अन्य किसी की उपासना मत करो । सच्चिदानन्द परमात्मा से भिन्न जीवात्मा का उपास्य अन्य कौन हो सकता है ? परमात्मा का आदेश है कि हम हिंसा से दूर रहें तथा इन्द्र को ही अपनी स्तुति का पात्र मानें । जब हम उपासना रूपी यज्ञ का आरम्भ करें तो अनवरत परमात्मा की महिमा का गान करें ।

प्रकारान्तर से यही बात मण्डल ८।९।८।१ में भी कही गई है । यहां वेद का आदेश है—

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवै ॥

सामवेद के उपासना परक मन्त्रों से हम ऐश्वर्यशाली इन्द्र की महिमा का गान करें । पममेधावी परमात्मा विप्र है, उसी के लिए हमारी विस्तृत प्रार्थनाएँ हैं । वेदज्ञानप्रदाता परमात्मा ही ब्रह्मकृत है वही ज्ञानी होने से विपश्चित कहलाता है । उसी के लिए हमारी स्तुतियां प्रस्तुत हैं ।

परमात्मा अभय है, अमर है । वह मरणधर्मा मनुष्यों की भाँति मृत्यु के वश में कभी नहीं होता । इन्द्र परमात्मा का यह कथन ऋग्वेद १०।४।८।५ में आया है—

अहमिन्द्रो न पराजिय इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥

सर्वैश्वर्य युक्त मैं परमात्मा (प्रथम पुरुष की उक्ति) न तो कभी पराजित होता हूं और न मृत्यु के वश में होता हूं । उपासना करने वाले भक्तगण मुझ से ऐश्वर्य (भौतिक तथा आध्यात्मिक धन) की याचना करते हैं । मेरा सख्य प्राप्त करने वाला भक्त कभी हिंसित नहीं होता और न उसका कभी पराभव होता है ।

(३) वायु देवता से प्रार्थना

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में परमात्मा का एक नाम 'वायु' बताया तथा इस सम्बन्ध में लिखा—जो चराचर जगत् का धारण जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम वायु है ।" प्रथम मण्डल के इस सूक्त के प्रथम तीन मन्त्र वायु देव परमात्मा की प्रार्थना में 'समर्पित हैं । यहां वायु देव से प्रार्थना की गई है—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।

तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १२१ ॥

दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र का इस प्रकार अर्थ किया है—"हे ज्ञान से देखने योग्य अनन्त बल युक्त, सबके प्राण रूप अन्तर्यामी परमेश्वर ! आप हमारे हृदय में प्रकाशित हूँजिए । आपने संसारी पदार्थों को अलंकृत किया है आप उन पदार्थों के रक्षक हैं । हमारी स्तुतियों को सुनें ।" १४ संस्कृत में मन्त्र का पदार्थ लिखते समय स्वामी जी ने 'वायु' का अर्थ 'अनन्त बल सर्वप्राणान्तर्यामिन्नीश्वर' किया है । मन्त्रगत वायु से भौतिक वायु का अर्थ लेना भी स्वामी जी ने अभीष्ट माना है ।

(४) वरुण का महिमा गान

वेदों के देवताओं में वरुण का विशिष्ट स्थान है । सर्वश्रेष्ठ, प्राणिमात्र का नियामक, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा परमात्मा 'वरुण' कहलाता है । वेदों में वरुण के शाश्वत नियमों को व्रत कहा गया है । उसे यत्र तत्र 'राजा' भी कहा गया है । दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली पवमान आहुतियों में वरुण देवता वाले कुछ मन्त्रों को रखा है । ऋग्वेद के निम्न मन्त्रों में वरुण का स्वरूप तथा वैशिष्ट्य बता कर उसका स्तवन किया गया है ।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

१२४।१५

वरुण परमात्मा से भक्त की विनय है कि वह उसे त्रिविध पाशों से छुड़ाये । आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक त्रिविध ताप ही तीन पाश हैं जिनसे जीवात्मा मुक्त होना चाहता है । इस आदित्य (विनाशरहित) वरुण से हमारा निवेदन है कि हम पर उसकी कृपावृष्टि सदा होती रहे, जिससे कि हम पाप रहित जीवन बिताते हुए परमात्मा के अविनाशी सुख को प्राप्त करें ।

इसी मण्डल का २५वां सूक्त वरुण को समर्पित है । उसके सभी २१ मन्त्र गायत्री छन्द में हैं जिनका ऋषि शुनः शेष है । भक्ति की उदात्त भावना से आपूरित इस सूक्त में व्यक्त निम्न बिन्दु विशेष रूप से चिन्तनीय हैं—

- (१) हे वरुण देव हम आपकी प्रजा कदाचित् अपने नियमों का उल्लंघन कर देते हैं तथापि हम आपकी करुणा के प्रतिदिन इच्छुक हैं । (१२५।१)
- (२) हे वरुण ! आप हम में हिंसा तथा प्रतिक्रिया की भावना को सदा निरुत्साहित करते रहें । (१२५।२)
- (३) जिस प्रकार रथ में घोड़े जोते जाते हैं उसी प्रकार हम उपासक उत्तम सुख की प्राप्ति के लिए अपने मन को पवित्र वाणियों से संयुक्त करते हैं । (१२५।३)
- (४) हे भगवान्, वह घड़ी कब आयेगी जब हम उत्तम सुख के लिए आपका कृपाभाव प्राप्त करेंगे ? (१२५।५)
- (५) वह वरुण सर्वज्ञ तथा सर्वद्रष्टा है । पक्षियों की गति तथा आकाशस्थ विमानों का मार्ग उसका जाना पहचाना है । वह समुद्र में प्रवहमान नौकाओं की गति को भी जानता है । (१२५।७)
- (६) सत्य नियम और शाश्वत व्रतों का धारक वरुण काल-चक्र को जानता है । उसे वर्ष, मासादि के कालविभाजन

- का सम्यक् ज्ञान है । (११२५।८)
- (७) श्रेष्ठ ब्रतों का धारणकर्ता वरुण हमें चक्रवर्ती साम्राज्य के संचालन के योग्य बनाये । (११२५।१०)
- (८) वह सर्वज्ञ वरुण हमारे सभी कर्मों को जानता है । उन सभी को जो हमने किये हैं अंथवा करने वाले हैं । (११२५।११)
- (९) वह आदित्य नाम वाला वरुण, हमारे जीवनपथ को सुगम बनाये । हमारी आयु को सुखों से परिपूरित करे । (११२५।१२)
- (१०) जिस प्रकार गौएँ सायं समय अपने गोष्ठ की ओर जाती हैं उसी प्रकार हमारी चित्तवृत्तियां उरुचक्ष (विज्ञान के प्रकाशक) वरुण की ओर जायें । (११२५।१६)
- (११) हे सर्वसाक्षी वरुण, तू हमारी स्तुति को तुरन्त सुन तथा हम पर कृपा कर । हम अपनी रक्षा के लिए तुझे पुकारते हैं । (११२५।१९)
- (१२) हमें त्रिविधि पाशों से मुक्त करो जिससे कि हम दीर्घायु प्राप्त करें । (११२५।२१)

वरुण के प्रति भक्त की दीनता को व्यक्त करने वाला तथा उसकी दया एवं करुणा की आकांक्षा का बोधक एक अन्य सूक्त सातवें मण्डल का ८९वां है । 'मृडा सुक्षत्र मृडय' की टेक वाले मन्त्रों का भाव वरुणावरुणालय वरुणदेव से कृपा की आकांक्षा रखता है । दैन्य भावों से परिपूरित हृदय वाले भक्त का कहना है कि मिट्टी के विनाशशील घर की भाँति यह नश्वर शरीर उसे मिला है । इसी के सहारे उसे भवसागर से पार जाना है । इसके लिए उसे वरुण की कृपा का ही सहारा है । उसकी स्थिति तो वैसी है जैसी जल में रह कर भी प्यास से पीड़ित मछली की होती है । ऐसी भीषण स्थिति से उबारना वरुण की दया का ही चमत्कार है । वस्तुतः वरुण को सम्बोधित मन्त्र वैदिक भक्ति की सर्वोच्च गुरुता तथा महत्ता को प्रख्यापित करते हैं ।

(५) सविता देव का स्तवन

वेदों में 'सविता' शब्द समस्त सृष्टि के उत्पादक परमात्मा का वाचक होने के साथ-साथ तेजस्वी सूर्य का भी वाचक है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र का देवता 'सविता' तथा द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में गायत्री मन्त्र की व्याख्या के प्रसंग में सविता को सब जगत् का उत्पन्नकर्ता तथा सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता बताया है।^{१५} ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ३५वें सूक्त के कुछ मन्त्र (२ से ११ तक) सविता विषयक हैं तथापि प्रथम मन्त्र में क्रियासिद्धि के लिए सविता को आहूत किया गया है।^{१६} यहां स्वस्ति के लिए अग्नि, रक्षा के लिए मित्र और वरुण, प्रगाढ़ निद्रा के लिए संसार को स्वयं के भीतर विलीन करने वाली रात्रि तथा 'ऊतये' (दयानन्द ने इसका अर्थ क्रियासिद्धि किया है) के लिए सविता का आह्वान किया है।

'सविता' को सूर्य वाचक मान कर दयानन्द सरस्वती ने—
आकृष्णोन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

१३५२

मन्त्र का वैज्ञानिक अर्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'आकर्षणानुकर्षण विषय' में दिया है। ऋग्वेद भाष्य में उन्होंने लिखा है कि सविता देवता वाले इस मन्त्र में श्लेषालंकार मानना चाहिए। यहां पृथ्वी आदि पदार्थों को सूर्य द्वारा धारण किये जाने का उल्लेख है। उनका कहना है कि सविता परमात्मा स्वसत्ता से सब लोकों को धारण करता है, उसी प्रकार सविता सूर्य पृथिव्यादि लोकों का धारण करता है। सूर्य तथा पृथ्वी के अनवरत भ्रमण से ही क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर आदि कालावयवों की गणना होती है।

ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के ६२वें सूक्त का दसवां मन्त्र प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के नाम से विख्यात है। इसे सावित्री

मन्त्र तथा गुरु मन्त्र भी कहते हैं। अन्यत्र यजुर्वेद में यह भूः भुवः स्वः इन तीन महाव्याहृति पूर्वक हैं^{१७} जब कि ऋग्वेद में यह महाव्याहृति विरहित है। दयानन्द सरस्वती ने स्वभाष्य में इसका अर्थ करते हुए सविता को सकल जगदुत्पादक, समग्रैश्वर्ययुक्त ईश्वर कहा तथा उससे याचनापूर्वक निवेदन किया कि उस सविता देव के भर्ग (पाप रूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला प्रभाव) को हम धरें जो हमारी प्रज्ञा (धियः) को सद्गुण, कर्म स्वभाव में प्रेरित करे। इसी प्रकार पञ्चम मण्डल के ८२ वें सूक्त का प्रथम मन्त्र भी सविता से सम्बद्ध है।

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।

श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥

यहां सविता देव के वरणीय भोजन का वरण करने की बात आई है। किन्तु प्रश्न है सविता का वरणीय भोजन कौन सा है जिसे हम धारण करें। स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ ‘पालन’ या भोक्तव्य पदार्थ किया है। वस्तुतः परमात्मा के अखण्डनीय नियम और व्रत ही वरणीय भोजन है। ईश्वरीय अनुशासन में रह कर हम अविद्यादि दोषों के नाशक सविता के भर्ग को यदि धारण करें तो हमारा कल्याण निश्चित है।

(६) उषा देवता

उषा के रूप में वेदों ने एक ऐसी कमनीय देवी को प्रस्तुत किया है जो अपने नैसर्गिक सौन्दर्य से जन्मन का रञ्जन तो करती ही है, अपने सद्गाणों से नारियों के समक्ष आचरणीय आदर्श भी प्रस्तुत करती है। यहां अनेक सूक्तों में सूर्योदय से पूर्व उषा काल के आगमन का भव्य और रम्य चित्र अंकित किया गया है। भास्वती उषा अपने आगमन के साथ सभी प्राणियों को जागृत होके स्वकर्मों में रत होने की प्रेरणा देती है। ऋग्वेद में उषा को युवती, अरुषी, भास्वती, अमृता, सुप्रतीका आदि ऐसे विशेषणों से सम्बोधित किया गया है जो

उसके भौतिक सौन्दर्य को दर्शाते हैं। साथ ही भद्रा, सूनरी, सूनृतावती, ऋतावरी, वाजिनी, वाजिनीवती जैसे अनेक विशेषण देकर उषा को आदर्श और कर्तव्य प्रवण नारी के रूप में चित्रित भी करते हैं। उषा को सम्बोधित ये सभी सूक्त उच्चकोटि के काव्य तथा सुरम्य कल्पना से युक्त हैं।

स्वामी दयानन्द ने उषा को सम्बोधित मन्त्रों में वाचक लुप्तोपमालंकार की अवस्थिति मान कर उषा के समान युवती, पतिव्रता सन्नारियों और माता-पिता की आज्ञानुवर्तिनी पुत्रियों के कर्तव्यों को देखा है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का ४८वाँ तथा ४९वाँ सूक्त उषा देवता को समर्पित है। ४८वें सूक्त के दूसरे मन्त्र में उषा को अश्वावती, गोमती आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है।^{१८} वह सूनृता—उत्तम वाणी बोलने वाली है तथा श्रेष्ठ धनों से गृहस्थों को सम्पन्न करती है। इसी सूक्त के तृतीय मन्त्र में उषा को दुहितर्दिवः प्रकाश की दुहिता (पुत्री) बताया जो सूर्य के उदय तथा चन्द्र के अस्त होने के साथ साथ पदार्पण करती है और संसार को प्रकाशित करती है—

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

प्रथम मण्डल के ९२वें सूक्त में उषा को भास्वती (दीप्तियुक्त), सूनृतानां नेत्री (शोभन कर्मों की प्रेरणा देने वाली) तथा निखिल जीव समुदाय को प्रबोध देने वाली (विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती) जैसे विशेषणों से युक्त बताया है। प्रतिदिन प्रातःकाल से पूर्व आने के कारण वेद ने उषा को पुनः पुनर्जायमाना तथा पुराणी (सदा से वर्तमान) बताया। क्षण क्षण में वृद्धि प्राप्त करने के कारण उषा को 'विभावरी' कहा है। उषा को सम्बोधित तीसरे मण्डल के ६१वें सूक्त के आठों मन्त्रों में उषा की उपमा से नारियों के गुणों की चर्चा है। स्वामी दयानन्द इस सूक्त की प्रस्तावना में लिखते हैं—अथ प्रातर्वेलोपमया स्त्रीगुणानाह ।

प्रातःकाल की वेला की उपमा से स्त्री के गुणों का कथन इस सूक्त का मुख्य अभिप्राय है। इन मन्त्रों में उषा के

लिए निम्न विशेषणों का प्रयोग हुआ है—वाजेन वाजिनी (विज्ञान युक्त), प्रचेता (ज्ञानप्रदात्री), मधोनी (वैभवशालिनी), पुराणी देवि युवति: (प्राचीन होते हुए भी सदा नवीन) पुरन्धी (अनेक गुणों वाली) तथा विश्ववारा (वरण करने योग्य)। इसी सूक्त के छठे मन्त्र में उषा को ऋतावरी (ऋत्युक्त) तथा रेवती (प्रशस्त धनदात्री), कह कर बताया गया है कि यह देवी उषा अन्तरिक्ष और पृथ्वी (रोदसी) के मध्य में विचित्र प्रकार से स्थित है ।

स्वामी दयानन्द ने उषा के मन्त्रों की व्याख्या में उसे सन्नारी का प्रतीक बता कर विदुषी स्त्रियों के गुणों का आदर्श सिद्ध किया है । वस्तुतः स्वामी दयानन्द वेदों के प्रत्येक मन्त्र से मानव को मिलने वाले किसी न किसी उपदेश की कल्पना अवश्य करते हैं ।

(७) ज्ञान और प्रकाश का देवता-सूर्य

‘न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं’ इस उपनिषद् वाक्य से सिद्ध होता है कि आकाशस्थ प्रकाशमान ग्रह, नक्षत्र, तारादिकों को प्रकाशित करने वाला परमात्मा ही है । इसे ही ऋग्वेद में ‘सूर्य’ कहा गया है । प्रथम मण्डल के ५० वें सूक्त का देवता सूर्य है । इसके प्रथम तथा दशम मन्त्र को स्वामी दयानन्द ने नित्य की जाने वाली सन्ध्या के उपस्थान मन्त्रों में स्थान दिया है ।

उद्यन्तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

जिस प्रकार पूर्व में उदय होते सूर्य को देख कर हम अज्ञानान्धकार से पृथक् होते हैं तथा स्वकर्तव्यों में लग जाते हैं, उसी प्रकार देवों में श्रेष्ठ देव इस सर्वात्मा सूर्य (परमात्मा) को प्राप्त होकर हम मोक्ष के भागी बनें ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

जिस प्रकार प्रकाश युक्त किरणों का प्रसारक सूर्य अपने अस्तित्व का बोध कराता है उसी प्रकार इस सृष्टि रचना को देखकर उसके रचयिता परमात्मा का हम ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इस सूक्त के चौथे मन्त्र में सूर्य को तरणि (क्षिप्रगति वाला), विश्वदर्शत (विश्व को दिखाने वाला), ज्योतिष्कृत् (प्रकाश करने वाला), विश्वमाभासि (समस्त विश्व को प्रकाशित करने वाला तथा रोचनम् (रुचिकारक) बताया ।^{१०} ये सभी विशेषण सूर्य के साथ-साथ परमात्मा में भी घटित होते हैं। इसलिए स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र की व्याख्या में स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार सूर्य सब बाहर-भीतर रहने वाले स्थूल पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ईश्वर भी वस्तु मात्र को प्रकाशित करता है।

(८) सर्वरक्षक परमात्मा वरुण, मित्र और अर्यमा नाम वाला

जैसा कि एकाधिक बार स्पष्ट किया जा चुका है, वेदों में परमात्मा को विभिन्न नामों से पुकारा गया है। इन्हें ही वेदों के भाष्यकार और व्याख्याकार देवता कहते हैं। ये नाम परमात्मा के विभिन्न गुण-कर्म और स्वभावादि के सूचक हैं। यथा, श्रेष्ठ तथा सर्वोत्तम होने से परमात्मा वरुण है तो जीव मात्र का हितैषी होने के कारण वह मित्र संज्ञा वाला है। न्यायकारी होने से उसे अर्यमा कहा जाता है। प्रथम मण्डल के ४१वें सूक्त का प्रथम मन्त्र स्पष्ट घोषणा करता है कि प्रकृष्ट विज्ञान वाला वरुण, सर्व सुहृत् मित्र तथा न्यायशील अर्यमा संज्ञक परमात्मा अपने जिस भक्त की रक्षा करते हैं उसे पीड़ित और हिंसित करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है—

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

नू चित्स दम्यते जनः ॥

भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि सर्वरक्षक परमात्मा की

विद्यमानता में उसका कदापि अहित नहीं होगा ।

(९) विश्वेदेवा देवता

प्राणि-समूह की हितचिन्तक तथा उनके भद्र की कामना करने वाली भौतिक, दैविक तथा मानवी शक्तियों को वेद में विश्वेदेवा नाम से पुकारा गया है । ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ८९वें सूक्त के कुछ मन्त्र 'विश्वेदेवा' देवताओं का लोक कल्याण के लिए आह्वान करते हैं । यथा—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु (१८९१) आदि^{११}

अनेक दिव्य तथा लौकिक क्रियाओं में निपुण, अहिंसक बुद्धि वाले दिव्य गुण सम्पन्न देवगण चारों ओर से हमारे लिए कल्याण युक्त तथा भद्र कर्मों का प्रवर्तन करें ।

इससे आगे के मन्त्र में विश्वेदेवों से देवताओं की भद्रसुमति प्राप्त कराने की याचना की गई है—

देवानां भद्रा सुमतिर्घज्यतां ॥१२॥ साथ ही देवताओं की मैत्री प्राप्त कराने की भी प्रार्थना है—देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम् । हमें दिव्यगुण सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों की मैत्री प्राप्त हो । वैदिक प्रार्थनाओं की विशिष्टता इसी तथ्य में निहित है कि यहां विधाता से श्रेष्ठ गुणों वाले देवताओं की बुद्धि तथा उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषों के सख्य की कामना की गई है । आसुरी बुद्धि तथा असुरों की मैत्री विनाश का पैग्राम लाती हैं ।

स्वस्ति कामना तथा भद्रभावना के सर्वत्र प्रसार की इच्छा यजमान को दिये जाने वाले आशीर्वाद के निम्न मन्त्रों में स्फुट है—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

१८९६

इन्द्र, पूषा, ताक्ष्य, अरिष्टनेमि तथा बृहस्पति संज्ञक परमात्मा से स्वस्ति कामना का यह प्रसिद्ध मन्त्र है । उक्त विशेषणों वाला परमात्मा हमें स्वस्ति प्रदान करे ।

श्रवण तथा चक्षु इन्द्रियों से भद्र वचनों को सुनने तथा भद्र दृश्यों को देखने की कामना करता हुआ भक्त अपने सभी अंगों के स्वस्थ और पुष्ट होने की प्रार्थना करता है। निष्कर्षतः भक्त का परमेश से निवेदन है कि उसकी समस्त आयु लोकहित तथा देवपुरुषों की सेवा में व्यतीत हो। भद्रं कर्णोभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। (१८९८) इसी अभिप्राय का द्योतक है। स्वस्थ नेत्र तथा कर्ण हमें सदा प्रबुद्ध बनाये रखें।

(१०) अदिति देवता

अखण्डनीया, अविभाज्य परमात्मा की दिव्य शक्ति को वेद में ‘अदिति’ नाम से सम्बोधित किया गया है। अदिति सूचक निम्न मन्त्र में उस परमात्मा को द्यौ, अन्तरिक्ष, पिता, माता तथा पुत्र कह कर सम्बोधित किया गया है। वस्तुतः विश्वेदेवों की समष्टि ही अदिति है—

अदितिद्यौर्दितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥

(१८९१०)

स्वामी दयानन्द ने ‘अदिति’ के इस मन्त्र का अर्थ ईश्वर, जीव तथा प्रकृति (‘जगत्’ का आदि कारण) परक करने की संस्तुति की है।

(११) सोम देवता

वेदों में ‘सोम’ का उल्लेख अनेक अर्थों में हुआ है। यह पवित्रता प्रदान करने वाला ‘पवमान’ है। परमात्मा के आनन्द रस के लिए भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद का एक पूरा मण्डल (नवम) ही सोम को समर्पित है। कालान्तर में एक मादक प्रभाव वाली लता को ‘सोमलता’ के नाम से अभिहित किया गया तथा यज्ञों में सोम पान को एक विशिष्ट क्रिया के रूप में स्मृत किया गया। वस्तुतः सौम्य

गुणों के प्रदाता परमात्मा ही सोम हैं। इसी सोम की स्तुति प्रथम मण्डल के ९१ वें सूक्त में विभिन्न प्रकार से की गई है। कुछ उदाहरण देखें—

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नधायतः ।

न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ १९११८

हे सर्वप्रिय सोम परमेश, आप हमारा अनिष्ट करने वालों से हमारी रक्षा करते हो। सच तो यह है कि आपको सखा बनाने वाला व्यक्ति कभी अनिष्ट या विनाश को प्राप्त नहीं होता।

सोम को हम अपने हृदय में स्थापित करें

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।

मर्य्य इव स्व ओक्ये ॥ १९११३

परमदेव परमात्मा के इस दिव्य काव्य वेद की महत्ता इस तथ्य में है कि यहां काव्य के सभी उपादान (रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, गुण, औचित्य आदि) न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र मिलते हैं। जहां तक अलंकारों का सवाल है, उपमा को अलंकारों का राजा कहा जाता है। क्योंकि अन्य सब अलंकारों में मूलतः ‘उपमा’ के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। काव्य-सृष्टि की यह विचित्रता है कि जहां कविगण उत्कृष्ट उपमानों का प्रयोग करते हैं वहां यदा कदा अत्यन्त सामान्य अथवा हीन कोटि के उपमानों का प्रयोग करने में भी उन्हें संकोच नहीं होता। आलोच्य मन्त्र में भक्त की प्रार्थना है कि वह उसके हृदय में उसी प्रकार रमण करे, जिस प्रकार गौएँ अपने भक्षणीय घासादि पदार्थों को पाकर प्रसन्न होती हैं अथवा एक साधारण मनुष्य अपने घर में आकर प्रसन्न होता है।^{१३}

(१२) रुद्र देवता

पौराणिक काल में शिव के नाम से प्रसिद्ध देवता का मूल वैदिक ‘रुद्र’ में देखा जा सकता है। ‘रुद्र’ शब्द की

व्युत्पत्ति करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है—“जो दुष्ट कर्म करने हारों को रुलाता है, इससे उस परमेश्वर का नाम रुद्र है।”^{१४} न्यायाधीश तथा दण्डनायक के लिए भी रुद्र का प्रयोग किया जा सकता है। प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त के ‘रुद्र’ देवता वाले मन्त्रों को स्वामी दयानन्द ने परमात्मा, राजा, न्यायाधीश तथा वैद्य आदि के कर्तव्यों का सूचक माना है।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्थकं (१११४।७) तथा मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। (१११४।८) आदि मन्त्रों का न्यायाधीश तथा राज्याधिकारीपरक अर्थ करते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं—“शासक जनों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे निरपराध प्रजाजनों को कष्ट न होने दें।” विशेषतः बच्चों, युवाओं, माता-पिता की श्रेणी में पहुंचे वरिष्ठों को सर्वोपरि रक्षणीय समझा जाना चाहिए। इसी प्रकार शिशुओं, कुमारों तथा गौ एवम् अश्वादि उपयोगी पशुओं को कोई कष्ट न पहुंचा सके, इसका ध्यान रखना न्यायाधिकारियों के लिए आवश्यक है। रुद्र को सर्वत्र व्याप्त परमात्मा तथा दुष्टों को दण्डित करने वाले सर्वोच्च शासक के रूप में यहां वर्णित किया गया है।

(१३) सर्वव्यापक विष्णु

पौराणिक काल में त्रिदेवों में प्रमुख विष्णु के महत्त्व और गरिमा में जैसी वृद्धि हुई वह अभूतपूर्व थी। अग्नि और इन्द्र आदि देवों की तुलना में विष्णु के मन्त्र वेदों में बहुत कम हैं।^{१५} दयानन्द सरस्वती ने विष्णु की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—‘वेवेष्टि व्याप्तोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः’ चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।^{१६} विष्णु के त्रिविध प्रकार से चक्रमण तथा सप्तधामों को धारण करने का उल्लेख प्रथम मण्डल के २२वें सूक्त के मन्त्रों में आया है। ये मन्त्र हैं—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामभिः (१२२।१६)

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

समूढमस्य पांसुरे ॥ (१२२।१७)

तथा

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ॥ (१२२।१८)

स्वामी दयानन्द ने सप्त धाम का अर्थ पृथ्वी से आरम्भ कर प्रकृतिपर्यन्त (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, विराट, परमाणु तथा प्रकृति) सात पदार्थों से किया है । इसी प्रकार 'त्रेधा निदधे पदम्' का अर्थ पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा प्रकाशमय सूर्य इन तीन लोकों से किया है । उनका कहना है कि परमात्मा के शाश्वत नियमों के वशवर्ती होकर सभी पदार्थ अपने-अपने धर्मों को धारण करते हैं । ध्यातव्य है कि विष्णु के तीन प्रकार के विचक्रमण के स्वारस्य को न समझ कर कालान्तर में विष्णु के पुराणोक्त वामन अवतार द्वारा सकल ब्रह्माण्ड को तीन कदमों में नाप लेने की गाथा का प्रचलन हुआ । भागवतादि अनेक पुराणों में वामन अवतार की कथा स्वल्प परिवर्तनों के साथ आई है ।

विष्णु के अवशिष्ट तीन मन्त्र जीवेश्वर सम्बन्ध के ज्ञापक हैं । विष्णोः कर्माणि पश्यत (१२२।१९) में इन्द्र संज्ञक जीव को विष्णु परमात्मा का नित्य सखा बताया है । वही जीव अपने सखा परमात्मा के सत्य-शाश्वत नियमों (ब्रतों) को देखता है, जानता है तथा यथासम्भव उनका पालन भी करता है । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः । (१२२।२०) मन्त्र में इस तथ्य की ओर संकेत है कि सूरि (विद्वान्) लोग परमात्मा के शाश्वत पद को अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसी प्रकार देखते हैं जिस प्रकार नेत्रधारी व्यक्ति सूर्य के प्रकाश को देखता है ।^{१६} विष्णु के परम पद (सर्वोच्च स्वरूप) को वे विप्रगण सरलता से प्राप्त कर लेते हैं जो सत्कर्मों को करने में जागृत रहते हैं तथा जागरूक हैं, सावधान हैं, जिन्होंने प्रमाद को अपने समीप फटकने नहीं दिया है ।^{१७} प्रथम मण्डल

के १५४, १५५ तथा १५६वें सूक्त भी विष्णु देवता से सम्बद्ध हैं। स्थान संकोच से इन सब का विस्तार करना सम्भव नहीं है।

(१४) पूषा देवता

जीवात्माओं के पुष्टि प्रदान करने तथा उनका पोषण करने के कारण परमात्मा का एक नाम पूषन् है। पूषा को सम्बोधित छठे मण्डल का दस ऋचाओं वाला ५४वां सूक्त है। गायत्री छन्द के इन मन्त्रों में पूषा से निम्न प्रार्थनाएँ की गई हैं— हे परमात्मन्, आप हमारा संसर्ग उन विद्वानों से कराये जो हमें उचित परामर्श देने वाले हों। (६।५४।१)

जो व्यक्ति सर्वपोषक परमात्मा की शरण में जाता है उसकी कोई हानि नहीं होती, उसके वैभव का नाश नहीं होता और न उसे शत्रुओं से व्यथित होना पड़ता है। (६।५४।२)

पूषा नाम वाला परमात्मा न केवल हमारे परिजनों का ही रक्षक है, वह हमारी गौओं, घोड़ों आदि का भी रक्षक है।

(६।५४।५)

अन्त में भंक्त की प्रार्थना है—हे पूषा देव, हम आपके व्रतों का अनुसरण करते हुए कभी पराभव को प्राप्त न हों। हम आपकी महिमा का निरन्तर गान करते हैं।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।

स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ (६।५४।९)

(१५) भग (भगवान्) देवता

‘भग’ ऐश्वर्य का वाचक है। भौतिक तथा आध्यात्मिक वैभव प्रदान कराने वाला परमात्मा ‘भग’ तथा ‘भगवान्’ नामों से पुकारा जाता है। सप्तम मण्डल का ४१ वां सूक्त इसी भग को समर्पित है। सूक्त के आरम्भ के पांच मन्त्रों को स्वामी दयानन्द ने प्रातःकाल शश्या त्याग के समय की जाने वाली ईश्वर स्तुति में विनियुक्त किया है।^{१८} प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं

हवामहे (७।४१।१) मन्त्र में सवरे उठकर अग्नि, इन्द्र, मित्र, बरुण, अश्विनौ, भग, पूषन्, ब्रह्मणस्पति, सोम तथा रुद्र आदि नामों से पुकारे जाने वाले परमात्मा की स्तुति करने का आदेश है। 'भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।' (७।४१।३) मन्त्र में ईश्वर की कृपा से भक्त के गौआँ, घोड़ों तथा श्रेष्ठ सन्तानों वाला होने की कामना की गई है। चतुर्थ मन्त्र में परमात्मा को मधवन् (परम पूजित ईश्वर) कह कर पुकारा गया है तथा उनसे प्रार्थना की गई है कि हम उपासक प्रत्येक समय उसकी कृपा रूप ऐश्वर्य को प्राप्त करते रहें। 'वयं देवानां सुमतौ स्याम' का आशीर्वाद मांग कर भक्त कहता है कि हम देवताओं की श्रेष्ठ बुद्धि (उत्तम सुमति) में सदा रहें। पञ्चम मन्त्र में भक्त का कथन है कि 'भग' रूप परमात्मा ही भगवान् है और उसकी कृपा से हम भी सकल ऐश्वर्यों से युक्त होवें—वयं भगवन्तः स्याम। (७।४१।५)

इस सूक्त का अन्तिम सातवां मन्त्र 'उषा' के लिए है। दयानन्द सरस्वती ने 'उषा' से आध्यात्मिक उपदेशिका तथा विदुषी स्त्री का अर्थ ग्रहण कर कहा है कि उषा तुल्य ज्ञान और प्रकाश दायिनी ये विदुषियां अश्वावती, गोमती, वीरवती आदि विशेषणों वाली हैं। ऐसी विदुषी सन्नारियां हमारी कामनाओं को पूरा करें तथा समस्त कल्याण एवं सुख से हमारी रक्षा करें—यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।

(१६) आपो देवता

वेद ने इस कथन को चरितार्थ किया है कि 'जल ही जीवन है।' सप्तम मण्डल का ४९वां सूक्त 'आपो देवता' की महिमा को प्रस्तुत करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जीवात्माओं को सर्वविध शान्ति तथा सन्तोष देने वाला होने के कारण परमात्मा 'आपः' संज्ञा से युक्त है। आलोच्य सूक्त जहां जल के भौतिक स्रोतों तथा उत्सों की चर्चा करता है, वहां यत्र तत्र आध्यात्मिक संकेत देकर परमात्मा को शान्ति, सुख

तथा सन्तोष प्रदाता के रूप में भी चित्रित करता है। आकाशस्थ मेघों तथा पृथिवी के समुद्रों में रहने वाला जल हमारे लिए सर्वविध रक्षक बने—ता आपो देवीरिह मामवन्तु । (७।४९।१) भौतिक जल की विभिन्न स्थितियां तथा उसके भिन्न-भिन्न स्रोतों की चर्चा इस सूक्त के दूसरे मन्त्र में आई है। यहां कहा गया है कि यह जल विभिन्न स्रोतों से हमें प्राप्त होता है। इसकी निम्न कोटियां हैं—दिव्य जल वह है जो आकाशस्थ मेघों के बरसने से प्राप्त होता है। ‘खनित्रिमा’ वह जल है जो कूप, वापी आदि को खोद कर निकाला जाता है। ‘स्वयंजा’ वह जल है जो निर्झर या स्रोत रूप में धरती को फोड़ कर निकलता है, ‘समुद्रार्थ’ समुद्र का जल है। ये सब प्रकार के जल हमारे लिए मंगलकारी हों, यही कामना है।^{१९} वस्तुतः परमात्मा ही जल के समान, हमें शीतलता तथा पावनता (शैत्य तथा पावनत्व) देता है। ध्यातव्य है कि आपो देवता स्त्रीलिंग में प्रयुक्त है।

(१७) पर्जन्य देवता

वेदों में प्रकृति के रम्य, साथ ही भीषण रूपों की छवि यत्र तत्र काव्यमयी शैली में निरूपित की गई है। पर्जन्य देवता के वर्णन वाला पञ्चम मण्डल का ८३वां सूक्त इसका अच्छा उदाहरण है। इस सूक्त की व्याख्या के आरम्भ में मन्त्रगत विषय का उल्लेख स्वामी दयानन्द ने इस प्रकार किया है—

अथ मेघः कीदृशोऽस्तीत्याह । अब यह मेघ (बादल) कैसा है, यह बताते हैं। सूक्त के दूसरे मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार की स्थिति दर्शाते हुए भाष्यकार स्वामी दयानन्द ने जहां एक ओर आकाशस्थ मेघों की क्रियाओं का उल्लेख किया वहां उनकी तुलना न्यायकारी राजा से की है। जिस प्रकार उग्र जल वर्षण के कारण धरती के वृक्ष छिन्न-भिन्न हो जाते हैं उसी प्रकार न्यायप्रिय राजा अपनी दण्डनीति से दुष्टों का नाश करता है। घोर नाद करता हुआ मेघ अजस्त्र जल-

धारा बहाता है उसी प्रकार राजा दुष्टों को नष्ट करता है ।

सप्तम मण्डल का तीन मन्त्रों का १०२वां सूक्त भी पर्जन्य देवता को समर्पित है । प्रथम मन्त्र में पर्जन्य को दिवस्पुत्र कहा है । मेघों से पृथ्वी में वपन की गई औषधियों को पुष्टि मिलती है । पर्जन्य के इन उपकारों को लक्ष्य में रख कर उनकी प्रशंसा करना सर्वथा उचित है ।

(१८) मण्डूक सूक्त

वर्षा और मेंढ़कों का अनिवार्य सम्बन्ध है । वर्षा के आगमन के साथ मेंढ़कों की ध्वनि सर्वत्र जलाशयों से सुनाई देने लगती है । सप्तम मण्डल का १०३वां सूक्त इन्हीं मण्डूकों को लक्ष्य में रख कर संकलित किया गया है । इस सूक्त का प्रास्ताविक मन्त्र है—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥

म० म० आर्यमुनि^{३०} ने इस सूक्त की प्रस्तावना में लिखा है—“वृष्टिकाल में वेदपाठ का व्रत धारण करने वाले ब्राह्मण वेद पढ़ने का व्रत लेते हैं । उधर वर्षा ऋतु में मेंढक जैसे जलचर ऐसी ध्वनि करते हैं मानो एक वर्ष के मौन व्रत के पश्चात् उन्हें बोलने का अवसर मिला है । यहां श्लेषालंकार से ब्राह्मणों का सस्वर वेदपाठ तथा जलाशयों में मेंढ़कों की एक स्वर ध्वनि के साथ-साथ वर्णित किया गया है । प्रायः इस प्रसंग की तुलना गोस्वामी तुलसीदास कृत वर्षा-वर्णन से की जाती है जिसमें यह चौपाई आती है—

दादुर धुनि चहुं ओर सुहाई ।

वेद पढ़हिं मनु बटु समुदाई ॥

कालान्तर में वेदों का पठन-पाठन समाप्तप्राय हो गया और वेदार्थ के जानने वाले नगण्य रह गये, उस समय इस मण्डूक सूक्त के वास्तविक अभिप्राय को न समझ कर यह कहा जाने लगा कि वेदों में तत्त्व की बात तो कुछ भी नहीं है । वहां तो

मेंढकों की टर्र टर्र ही लिखी है। ब्रह्मसमाज के आचार्य देवेन्द्रनाथ ठाकुर के काशी से लौट कर आये शिष्यों ने उन्हें वेदों के बारे में ऐसी ही रिपोर्ट दी थी जिसे सुनकर ब्रह्मसमाज ने वेदों से तोबा कर ली।

(१९) सोम का विशिष्ट विवेचन

अष्टम मण्डल का ४८वाँ सूक्त 'सोम' नामवाले परमात्मा की बहुविध स्तुति करता है। उस सूक्त के तीसरे मन्त्र में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कोई अज्ञानी पुरुष सोम का साधारण मादक पदार्थ (रस) समझने की भूल न कर बैठे। यह सोम तो भगवत्-प्राप्ति से उत्पन्न आनन्द है जिसे पीकर मनुष्य को अमृतत्व की प्राप्ति होती है और परमात्मा की दिव्य ज्योति का दर्शन होता है—

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

यह सोम ही दिव्य आत्माओं का साक्षात्कार कराता है। इस सोमपायी की दुष्ट लोग कुछ भी हानि नहीं कर सकते। इस सूक्त में सोम को 'राजा' कह कर सम्बोधित किया गया है—

सोम राजन् प्रण आर्यूषि तारी० (८४८१७)

हे सोम राजा आप हमारी आयु बढ़ावें ।

सोम राजन् मृडया नः स्वस्ति (८४८१८)

हे सोम राजा, आप हमारा कल्याण करें, हम पर दयालु हों ।

तस्मे सोमाय हविषा विधेम मृडीके अस्य सुमतौ स्याम । (८४८१२)

हम उस सोम परमात्मा के लिए अपनी भक्ति रूपी हवि अर्पित करते हैं। उस कृपालु सोम की अनुकम्पा से हम सद् बुद्धि वाले हों।

दशम मण्डल के ८५वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में यह स्पष्ट किया गया है कि सत्य ने इस भूमि को धारण किया है

जब कि सूर्य ने द्यौः लोक को धारण कर रखा है । परमात्मा के ऋत् के कारण ही द्वादश आदित्य स्थिर हैं जब कि भक्त को आनन्द देने वाला दिव्य लोक (स्थिति) 'सोम' परमात्मा के अधीन है । यह ध्यान रहे कि सोम का अलौकिक स्वरूप भी इसी सूक्त के तीसरे मन्त्र^{३१} में स्पष्ट किया गया है जहां यह कहा है कि सामान्य जन तो सोम को एक औषधि ही मानते हैं किन्तु जिन ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने सोम के आध्यात्मिक स्वरूप को जाना है वे इसके भक्षण करने की बात नहीं करते, क्योंकि यह कोई भौतिक पदार्थ नहीं है ।

सोम को समर्पित नवम मण्डल

नवम मण्डल के सभी ११४ सूक्त सोम नाम वाले परमात्मा की महिमा का गान करते हैं । इस मण्डल के प्रथम सूक्त का प्रास्ताविक मन्त्र है—

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।

इन्द्राय पातवे सुतः ॥

परमात्मा से प्राप्त होने वाले आनन्द रस की 'सोम' संज्ञा है । सौम्य गुण निधान परमात्मा भी सोम पद वाच्य है । साधक की कामना है कि आनन्दोत्पादक दिव्य माधुर्य को प्रदान करने वाली भक्ति रस की ये पुनीत धाराएं निरन्तर प्रवाहित होती रहें । इन्द्र रूपी जीवात्मा इन भक्ति रस की धाराओं में स्नान कर स्वयं को पवित्र करता है । सोम का यही आध्यात्मिक अर्थ है ।

इसी मण्डल के ८३वें सूक्त के प्रथम मन्त्र को स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में चक्रांकित मत खण्डन के प्रसंग में उद्धृत किया है । ध्यातव्य है कि चक्रांकित वैष्णव इस मन्त्र को स्वशरीर को विष्णु के शंख, चक्र आदि चिह्नों से दाग देने के अर्थ में विनियुक्त मानते हैं जब कि स्वामी जी के अनुसार इसमें ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु के उल्लेख पूर्वक कहा गया है कि उस परमात्मा ने ही अपने

सर्व-सामर्थ्य से इस संसार को धारण किया है। जो भक्त शम, दम, योगाभ्यास तथा ब्रह्मचर्य पालन कर अपनी आत्मा को पवित्र कर लेते हैं वे ही परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को जानते हैं। मन्त्र इस प्रकार है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तस्माशत ॥

१८३१३

(२०) विश्वेदेवा देवता

वे सब भौतिक और दिव्य शक्तियां जो जीव जगत् का हित साधन करती हैं 'विश्वेदेवा' देवता वर्ग के अन्दर परिणित होती हैं। सप्तम मण्डल के ३५वें सूक्त के सभी पन्द्रह मन्त्र विश्वेदेवा देवता वर्ग को सम्बोधित करते हैं। यज्ञादि सभी मंगल कार्यों के आरम्भ में स्वामी दयानन्द ने शान्तिकरण के जिन मन्त्रों का उच्चारण करने का निर्देश दिया है उनमें ऋग्वेद के ये मन्त्र सम्मिलित हैं। 'शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या' से आरम्भ होने वाला यह मन्त्र-क्रम 'ये देवानां यज्ञिया यज्ञियाना मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः' इस अन्तिम मन्त्र पर समाप्त होता है। इन मन्त्रों में परिणित वे दिव्य तथा भौतिक पदार्थ कौन से हैं, इनकी एक संक्षिप्त विवरणिका यहां दी जा रही है—

१. इन्द्राग्नी=विद्युतपावक, इन्द्रावरुणा=विद्युत्-जल, इन्द्रासोमा=विद्युत् औषधि, इन्द्रापूषणा=विद्युत् वायु ।
२. भग=ऐश्वर्य, शंसः=अनुशासन प्रशंसा, पुरन्धि=आकाश, रायः=धनानि, अर्यमा=न्यायकारी ।
३. धाता=धर्ता, धर्ता=पोषक, उरुची=पृथ्वी, स्वधाभिः=अन्नादि, रोदसी=द्यावा-अन्तरिक्ष, अद्रिः=मेघ, देवानां सुहवानि=विद्वानों का सुष्ठु आह्वान तथा प्रशंसा ।
४. अग्नि=पावक, ज्योतिरेवानीकं=ज्योति रूपी सेना, मित्रावरुणा=प्राण-उदान, अश्विना=व्यापक पदार्थ, सृकृतां सुकृतानि=

धार्मिकों का धर्माचरण, इषिरः वातः—शीघ्रगामी वायु ।

५. द्यावापृथिवी-विद्युत् भूमि, अन्तरिक्ष=भूमि और सूर्य के मध्य का आकाश, ओषधी=यव, सोमलतादि, वनानि=वनस्थ वृक्ष, रजसस्पति जिष्णुः=जयशील समस्त लोकों का स्वामी। सूक्त में कथित विश्वेदेवों का अवशिष्ट विचार दयानन्द भाष्य में देखा जा सकता है ।

विश्वेदेवा: को समर्पित दशम मण्डल का १३७वाँ सूक्त भी विचारणीय है । व्यक्ति और समाज के शुभ चिन्तक, लोकोपकार में रत महानुभावों को वेद ने विश्वेदेवा देवता की संज्ञा दी है । इस सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।

उतागाशचक्रुषं देवा जीवयथा पुनः ॥

समाज के मुख्य पुरुषों तथा नेताओं का कर्तव्य है कि यदि कोई व्यक्ति कारणवश पतित हो गया है तो उसे पुनः उन्नति पथगामी बनाने का प्रयत्न करें । यदि किसी ने जाने अनजाने पापाचरण किया है तो उसे पुनः निष्पाप बनाने का यत्न होना चाहिए । इस प्रकार पतित और पथ विचलित पुरुष को सन्मार्ग पर लाकर एक प्रकार से उसे नया जीवन प्राप्त कराना चाहिए ।

(२१) विश्वकर्मा देवता

जगद्रचयिता, सृष्टि का उत्पन्नकर्ता परमात्मा वेदों में ‘विश्वकर्मा’ पदवाच्य है । दशम मण्डल का ८१वाँ सूक्त विश्वकर्मा के दिव्य गुण-कर्मों का वर्णन करता है । सर्वत्र विद्यमान द्यौलोक तथा भूमि को उत्पन्न करने वाले एक देव का काव्यात्मक उल्लेख इस सूक्त के तीसरे मन्त्र में है—
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैद्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

सर्वद्रष्टा (सब ओर निहारने वाला), सर्वत्र व्याप्त, सर्वत्र प्रसरित शक्ति वाला, सर्वत्र विद्यमान परमात्मा अपनी

दिव्य शक्तियों से समस्त ब्रह्माण्ड को आन्दोलित करता है। संसार के सभी लोकलोकान्तरों का रचयिता वह देव एक ही है। उसके सदृश दूसरा कोई नहीं है। दशम मण्डल का ८२वाँ सूक्त भी विश्वकर्मा की महिमा का गायन करता है। इस सूक्त का तीसरा मन्त्र द्रष्टव्य है—

**यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥**

जो परमात्मा हमें जन्म देने वाला तथा पिता तुल्य पालक है, वही हमारे कर्मों के फलों का प्रदाता है, वही सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों तथा निखिल भुवनों का ज्ञाता है। वस्तुतः अनेक दिव्य पदार्थों (देवों) में उसकी विशिष्ट स्थिति है। उस जानने के योग्य परमात्मा को हम जीव अपना आश्रय बनाते हैं।

इस विश्वकर्मा परमात्मा को अज्ञानी मनुष्य नहीं जानता, क्यों? इसका उत्तर इस सूक्त के अन्तिम सातवें मन्त्र में आया है—

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।

नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

अज्ञानी मनुष्य उस सर्वस्वष्टा परमात्मा को नहीं जानते जिसने इस ब्रह्माण्ड को बनाया है। इस अज्ञान का कारण भी बताते हैं—वस्तुतः वह लोकसर्जक प्रभु तो हमारे हृदयमन्दिर में ही अवस्थित है किन्तु उसके और हमारे बीच में अज्ञान का आवरण पड़ा है, इसी कारण हम उसे नहीं देख पाते। कुछ अन्य कारण भी हैं, जिनसे हम उस परमात्मा को नहीं देख पाते और न समझ पाते हैं। प्रथम तो हम में आस्तिक बुद्धि का अभाव है। हम विश्वस्वष्टा के अस्तित्व को लेकर व्यर्थ का शुष्क वाद-विवाद करते रहते हैं। वाणी का संयम न होने से हमारी यह जल्पना निषेधात्मक बन जाती है। एक अन्य कारण हमारा इन्द्रियारामी होना भी है। हम अपने प्राणों तथा इन्द्रियों के पोषण में सदा लगे रहते हैं। हमारी पूजा-उपासना कथन मात्र की होती है। उसमें हार्दिकता तथा प्रगाढ़ भावना नहीं

रहती । इन्हीं कारणों से हम विश्वकर्मा का सत्य स्वरूप नहीं जान पा रहे हैं ।

(२२) सरस्वती देवता

‘सरस्वती’ को परमात्मा का नाम सिद्ध करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा—“सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चित्तौ सा सरस्वती । जिसको विविध विज्ञान, अर्थात् शब्द-अर्थ सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे, उस परमेश्वर का नाम सरस्वती है ।”^{३२} इसी व्युत्पत्ति के आधार पर स्वामी जी ने ऋग्वेद (१।३) में आये सरस्वती देवता का वर्णन करने वाले तीन मन्त्रों की व्याख्या की है—

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ १।३।१०

उपासक जीवों को पवित्र करने वाली, नाना बलों से युक्त सरस्वती हमारे यज्ञ रूपी शुभ कर्मों को प्रकाशित करे ।

चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।

यज्ञं दधे सरस्वती ॥ १।३।११

यह सरस्वती सत्यवादी मनुष्यों को सत्कर्म करने की प्रेरणा देने वाली है, सद्बुद्धि वालों को सचेत करने वाली तथा स्वकर्तव्य में प्रेरित करने वाली है । वही हमारे लोकहितकारी प्रशस्त यज्ञों का आधार बनती है ।

महोऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।

धियो विश्वा वि राजति ॥ १।३।१२

वह सरस्वती विद्या और विज्ञान का अगाध सागर है, वह अपनी प्रज्ञा तथा शोभन कर्मों द्वारा मनुष्यों को चेतना देती है । वह हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करती है ।

परमात्मा पुर्णिलिंग-स्त्रीलिंग के विचार से परे है । अतः अदिति, सरस्वती, देवी आदि स्त्रीलिंग शब्दों का परमात्मा के लिए प्रयोग दोषावह नहीं है ।

(२३) बृहस्पति (ब्रह्मणस्पति) देवता

सत्यार्थप्रकाश में बृहस्पति शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं—“यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः । जो आकाशादि ब्रह्मण्डों का पालक, रक्षक व स्वामी है, वह बृहस्पति है ।”^{३३} ब्रह्मज्ञान तथा वेदज्ञान के स्वामी एवं प्रदाता को भी बृहस्पति कहा गया है । ऋग्वेद के दूसरे मण्डल का २३वाँ सूक्त बृहस्पति का स्तुति गान करता है । यहां बृहस्पति को गणनीयों में मुख्य (गणानान्त्वा गणपति), बुद्धिमानों में महा बुद्धिमान् (कविं कवीनाम्) श्रेष्ठ उपमाओं वाला, ज्येष्ठराज (ज्येष्ठों में विशिष्ट राजा के तुल्य) तथा ब्रह्मज्ञों में विशिष्ट ज्ञानी कहा गया है । सुनीतिभिर्त्रायसे जनम् (२।२३।४) मन्त्र में वेद का कथन है कि वाणी का अधिष्ठाता वह बृहस्पति सुष्टु धर्म और न्याय की नीतियों से जनसामान्य की रक्षा करता है तथा उन्हें सन्मार्ग दिखाता है । उपासक की उस ब्रह्मणस्पति से प्रार्थना है—“आप हमें वैदिक सूक्तों के यथार्थ अभिप्राय तक पहुंचाने वाले हैं—(त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य) अतः आप हमारी सन्तानों को बोध प्रदान करें । आपके अनुग्रह से विद्वान् देवगण भद्र कर्मों से हमारी रक्षा करें तथा जीवन-संग्राम में हमारे वीरों का जयघोष सर्वत्र गुज्जायमान होवे ।

(२४) यम देवता

सब प्राणियों को कर्मफल प्रदान करने वाला, उन्हें नियमों एवम् अनुशासन में रखने की शिक्षा देने वाला परमात्मा वेद में यम पदवाच्य है । ऋग्वेद में दशम मण्डल के १४वें तथा १३५वें सूक्त में यम नाम वाले परमात्मा का विशद उल्लेख है । इन मन्त्रों के यथार्थ आशय को न जान कर इन्हीं के आधार पर पौराणिक युग में यम विषयक अनेक नवीन सन्दर्भ कल्पित किये गये हैं । वैदिक देवता यम न्यायकारी परमात्मा ही है ।

पाद-टिप्पणियां-

१. या तेनोच्यते सा देवता: ।

२. ऋग्वेद १।६४।४६

३. “इन वैदिक देवों के लिए क्या रोया जाय, सब से बड़ी दुर्गति तो इन्द्र की हुई है ।---शतपथ ब्राह्मण के शब्दों में इन्द्रः सर्वा देवताः इन्द्रश्रेष्ठा देवाः---परन्तु आज कल इन्द्र इतने छोटे हो गये कि उनको गरुड़ और हनुमान् के बराबर भी आसन मिलना कठिन है ।”

डॉ० सम्पूर्णानन्द : ब्राह्मण सावधान १९।२०।२००१ वि० ४ द्रष्टव्य-ऋग्वेद के प्रथम नौ मन्त्रों का भाष्य-वैदिक यन्त्रात्तय अजमेर २००० वि० (तृतीयावृत्ति)

५. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीद्यो नृतनैरुत ।

स देवां एह वक्षति ॥ १।१।२

६. त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।

७. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

८. यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।

२।२।१

९. देखें सत्यार्थप्रकाश में मैक्समूलर समालोचना

१०. सत्यार्थप्रकाशः ११वां समुल्लास

११. सायण ने यह कथा बृहदेवता (४।६५-७९) से ली है
जिसमें इन्द्र, गृत्समद तथा दैत्यों का एक काल्पनिक प्रसंग लिखा गया
है ।

१२. कया नश्चत्र आ भुवदूती सदावृथः सखा ।

कया शचिष्ठ्या वृता ॥ ४।३।१।१

कस्त्वा सत्यो मदानां महिष्ठो मत्सदन्धसः ।

दृढा चिदारुजे वसु ॥ ४।३।१।२

अभी षु णः सखीनामविता जरितृष्णाम् ।

शतं भवास्यूतिभिः ॥ ४।३।२।३ (सामवेद में)

१३. ऋग्वेद दयानन्द भाष्य-प्रथम खण्ड

१४. सत्यार्थप्रकाश-तृतीय समुल्लास

१५. ह्याम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्यामि मित्रावरुणा विहायसे ।

ह्यामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्यामि देवं सवितारमूतये ॥

१६. यजुर्वेद ३६।३

१७. अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ॥

१८. कठोपनिषद् २।२।१५

१९. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।

विश्व माभासि रोचनम् ॥

२०. पूरा मन्त्र है—

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्यासो अपरीतास उद्दिदः ।
देवा नो यथा सद्मिद्बृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥

२१. पूरा मन्त्र है—

देवानां भद्रा सुमतिर्षज्युयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।

देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥

२२. सोम के वैदिक अभिप्राय को विस्तार से हृदयंगम करने के लिए 'सोम तत्त्व' (सम्पादक: कल्याणमल लोढा) तथा कमलाप्रसाद (द्विवेदी) नामक ग्रन्थ पठनीय है। मानस ग्रन्थागार वाराणसी से १९९८ में प्रकाशित ।

२३. सत्यार्थप्रकाश-तृतीय समुल्लास

२४. ऋग्वेद में केवल पांच सूक्त तथा कुछ सूक्तांश विष्णु को सम्बोधित हैं ।

२५. सत्यार्थप्रकाश : प्रथम समुल्लास

२६. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥ १।२।२।२०

२७. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।

विष्णोः यत् परमं पदम् ॥ १।२।२।२१

२८. द्रष्टव्य—संस्कारविधि का गृहाश्रम प्रकरण

२९. या आपो दिव्या उत वा स्ववन्ति खनित्रिमा उत वा यः स्वयंजाः । समुद्रार्था याः शुचयः पावका आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

७।४।९।२

३०. ऋग्वेदभाष्य सप्तम मण्डल (भाग २)—

प्रकाशक परोपकारिणी सभा अजमेर २०४६ वि०

३१. सोमं मन्यते पपिवान् यत्सम्पिष्ठन्त्योषधिम् ।

सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याशनाति कश्चन ॥१०।८५।३

३२. सत्यार्थप्रकाश-प्रथम समुल्लास

३३. उपर्युक्त

अध्याय ३

ऋग्वेद में दार्शनिक सन्दर्भ

दर्शन, धर्म, अध्यात्म शास्त्र, नीति एवम् आचार शास्त्र, लौकिक ज्ञान-विज्ञान, मानव के हित ऐसी कौन सी ज्ञान की शाखा या विधा है जिसकी चर्चा वेदों में न आई हो । ऋग्वेद वेद संहिताओं में प्रथम स्थान रखता है, साथ ही आकार में भी बृहत्तम है । उसमें दर्शन, तत्त्वज्ञान, तथा आचार एवं नीति विषयक मन्त्रों का बाहुल्य है । यहां हम दर्शन एवम् आचार शास्त्र के अन्तर्गत आने वाले ऋग्वेद के कतिपय सन्दर्भों का समीक्षण करेंगे ।

ऋग्वेद में परमात्मा का विचार-

यों तो अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि वैदिक देवों के स्तबन में समर्पित सभी ऋग्वेदीय मन्त्र परमात्मा को ही व्याख्यात करते हैं क्योंकि वह एक, अद्वितीय, सच्चिदानन्दादि लक्षणों वाला परमात्मा ही इन नामों से सम्बोधित है तथापि अनेक ऐसे सूक्त ऋग्वेद में आये हैं जो आद्यन्त सृष्टि रचयिता तथा मानवी सृष्टि पर अनुग्रह करने वाले दिव्य ईश्वर की सत्ता की ओर संकेत करते हैं । दशम मण्डल का १२१वां हिरण्यगर्भ सूक्त दश मन्त्रों का एक ऐसा ही अद्भुत स्तोत्र है जिसमें जगद्रचयिता परमात्मा का भक्तिपूर्वक स्मरण एवं निदिध्यासन को मानव का परम कर्तव्य बताया गया है । ‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’ की टेक वाले ९ मन्त्रों के पश्चात् सूक्त के अन्तिम दशम मन्त्र में प्रजापति परमात्मा को सम्बोधित कर कहा गया है कि इस वस्तु जगत् में कोई ऐसा नहीं है जो आपसे श्रेष्ठ या उत्कृष्ट हो । ऐसे सर्व सुखप्रदाता परमात्मा से

रथि रूप आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्यों की कामना की गई है।

इस सूक्त का देवता 'कः' है जो परमात्मा का वाचक है। ऐतरेय ब्राह्मण में प्रजापतिर्वै कः तथा गोपथ ब्राह्मण में सुखं वै कः का उल्लेख कर प्रजाओं के स्वामी सुख स्वरूप परमात्मा को कः नाम दिया गया है। हिरण्यगर्भ सूक्त के चार मन्त्रों (हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रेऽ, यः आत्मदा बलदा० यः प्राणतो निमिषतो० तथा येन द्यौरुग्रा०) को स्वामी दयानन्द ने स्वरचित ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना प्रकरण में सार्थ संकलित किया है। इन मन्त्रों के दयानन्द कृत अर्थों में विशेष स्वारस्य, गाम्भीर्य तथा भक्ति प्रवणता के दर्शन होते हैं। इस सूक्त का चौथा मन्त्र है—

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

इसमें गगन स्पर्शी हिमशीतल पर्वत शृंगों को परमात्मा की महिमा का सूचक बताया है। समुद्र एवं नदियों जैसे अगाध जलस्रोतों को परमात्मा के महत्व का ज्ञापक बता कर चारों दिशाओं को उसकी सर्वतोव्याप्त भुजाओं का प्रतीक बताया है।

पश्चिमी वेदज्ञों ने मन्त्रों में प्रयुक्त कः के शास्त्रोक्त अर्थ को ठीक ठीक नहीं समझा और उन्होंने 'कस्मै' का अर्थ किस देवता के लिए 'हविषा विधेम' हम अपनी हवि अर्पित करें, ऐसा किया तथा यह बताने का प्रयास किया कि वेदप्रणेता (उनकी दृष्टि में वेद ऋषिप्रणीत हैं) ऋषियों तथा उनके अनुयायी आर्यों को अपने आराध्य का कोई निश्चयात्मक ज्ञान नहीं था। इसलिए वे डांवाडोल मनःस्थिति में स्वयं से ही पूछते हैं—कस्मै देवाय हविषा विधेम। हम किस देवता को अपनी 'हवि' प्रदान करें? वस्तुतः दयानन्द सरस्वती ने कस्मै पद का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट किया और इन प्रार्थना मन्त्रों को एकमेव परमात्मा के लिए प्रयुक्त सिद्ध किया।^१

ऋग्वेद में अन्यत्र नासदीय सूक्त, आस्यवामीय सूक्त, वागाम्भृणी सूक्त आदि प्रकरण आये हैं जिनमें विभिन्न दार्शनिक तत्त्वों का सुचारू विवेचन मिलता है। यहां संकेत रूप में इनका विचार अपेक्षित है।

नासदीय सूक्त-

दशम मण्डल का १२९वां सूक्त नासदीय सूक्त इसलिए कहलाता है क्योंकि इसका प्रथम मन्त्र ‘नासदासीनो सदासीत्’ पदों से आरम्भ हुआ है। सात मन्त्रों के इस सूक्त में सृष्टि-रचना के पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय अव्यक्त प्रकृति जो संसार का उपादान कारण है, अप्रकट अवस्था में थी। अतः उस स्थिति को सत् तथा असत् दोनों स्थितियों से भिन्न कहा जा सकता है। जब कोई जीव जीवित (शरीर धारी) अवस्था में नहीं था तो उस समय मृत्यु तथा अमृत के होने का तो सवाल ही नहीं उठता। वस्तुतः वह गहन तम की ऐसी अवस्था थी जहां प्रकृति अपने कारण (अव्यक्त) रूप में ही थी। तत्पश्चात् जब सृष्टि-रचना का क्रम आरम्भ हुआ तो प्रथम ‘काम’ उत्पन्न हुआ। परमात्मा ने अपनी ईक्षण शक्ति के द्वारा जगत् की रचना की। वस्तुतः उपादानभूत प्रकृति का अधिष्ठाता परमात्मा है जो उसका अध्यक्ष है—‘यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ।’ (११२९।७) और आकाश के तुल्य व्यापक है। स्वरचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामी दयानन्द ने इस सूक्त को सृष्टिविद्या विषय में उद्घृत कर उसका भावार्थ दिया है।

सृष्टि-रचना की प्रक्रिया को दर्शाने वाला— अघमर्षणसूक्त

‘ऋतं च सत्यं च’ से आरम्भ होने वाला तीन मन्त्रों वाला अघमर्षण सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का १९० वां सूक्त है। स्वामी दयानन्द ने दैनिक सन्ध्योपासना में इसे

अघमर्षण मन्त्रों के अन्तर्गत स्थान दिया है। परमेश्वर ने ऋतु और सत्य तथा अपने ज्ञानमय तप के द्वारा सृष्टि की रचना की है। महाप्रलय रूपा प्रकृति के अव्यक्त स्वरूप ने परमाणु रूप महार्णव को प्रकट किया। तत्पश्चात् संवत्सर, अहोरात्र आदि कालमापक मानकों का प्रचलन हुआ। पूर्वकाल की सृष्टि की भाँति परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र, द्यौलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक का सृजन किया और इस प्रकार सृष्टि का विस्तार हुआ। परमात्मा द्वारा सृष्टिरचना के इस क्रम का चिन्तन करने से मनुष्य की पाप से निवृत्ति हो जाती है।

सृष्टि-रचना क्रम का सूचक पुरुष सूक्त-

ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में विराजमान 'पुरुष' परमात्मा ने इस सृष्टि को जिस क्रम से रचा है उसका काव्यात्मक उल्लेख पुरुषसूक्त में मिलता है। ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त १०वें मण्डल का ९०वां सूक्त है और इसमें कुल १६ मन्त्र हैं। नारायण ऋषि द्वारा द्रष्ट इस सूक्त का देवता पुरुषपद वाच्य परमात्मा है। प्रथम मन्त्र में जिस पुरुष को सहस्र शिरों वाला, सहस्र नेत्रों तथा सहस्र पांओं वाला बताया गया है, वहां आये 'सहस्र' पद को दयानन्द सरस्वती ने 'असंख्यात' अर्थ दिया है।^१ यह पुरुष ही है जिसने अतीत (भूत) तथा भविष्य (भव्य) को स्वाधिकार में रखा है। उस परमात्मा की महिमा का बखान कैसे किया जाये? जड़-जंगम संसार को यदि उसकी महिमा का प्रतीक माना जाये तो वह अपर्याप्त कथन है। कारण कि यह व्यक्त ब्रह्माण्ड तो उसका एक पादस्थानीय है, अवशिष्ट त्रिपाद उस की महिमा में ही स्थित हैं।^२

अवशिष्ट मन्त्रों में पुरुष से विराट्, अधिपुरुष, भूमि तथा नाना लोकों के उत्पन्न होने, देव, साध्य तथा ऋषि कोटि के मनुष्य, आकाश में उड़ने वाले वायव्य पक्षी, अरण्यवासी तथा ग्राम वासी (गाय, घोड़े आदि) पशुओं के उत्पन्न होने की बात कही गई है। उस सर्वपूज्य यज्ञ नाम वाले परमात्मा ने

ऋग्वेदादि चारों वेदों को उत्पन्न किया^४ तथा मानव समाज का श्रम के आधार पर ब्राह्मण क्षत्रिय (राजन्य) वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों के रूप में विभाजन किया।^५ उस विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा तथा चक्षुओं से सूर्य उत्पन्न हुआ। मुख से विद्युत् (इन्ड्र) तथा अग्नि और प्राणों से वायु उत्पन्न हुआ।^६ उस विराट् की नाभि से अन्तरिक्ष तथा शीर्ष (सिर) से द्यौलोक की उत्पत्ति हुई। पांओं से भूमि तथा श्रोत्रों (कानों) से दिशाएं तथा लोक पैदा हुए।^७ इस प्रकार सृष्टि-रचना के पश्चात् दिव्य गुणों वाले देवजनों ने यज्ञ रूपी साधन से यज्ञ नाम वाले ऋग्वेद का यजन-पूजन किया। वही जीव मात्र का प्रथम धर्म कहलाया। पूर्व काल के साध्यजनों (विद्वान् पुरुषों) ने जिस नाक रूपी मोक्ष को प्राप्त किया वही उन देवजनों को भी मिला जिन्होंने विराट् पुरुष का यज्ञ के माध्यम से पूजन किया था।^८

परमात्मा का ‘पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति’ के रूप में आत्मकथन—

दशममण्डल का १२५वां सूक्त वागाभृणी सूक्त कहलाता है। आठ मन्त्रों के इस सूक्त में परमात्मा अपनी ज्ञानशक्ति की प्रतीक वाक् के रूप में स्वयम् अपनी महिमा तथा अपने बल और ऐश्वर्य का प्रथम पुरुष (First person) में वर्णन करते हैं। यह महामहिमा शालिनी महीयसी दैवी वाक् (परमात्मा) कहती है कि रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, विश्वदेवों, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनौ में मैं ही विचरणी करती हूँ तथा मैं ही उनकी धारकशक्ति हूँ।^९ यहां जिन रुद्रों, वसुओं आदि देवताओं के नामों को कहा गया है वे परमात्मा से शक्ति प्राप्त दैवी तथा भौतिक शक्तियां हैं। इनकी भौतिक, दैवी शक्तियां वस्तुतः परमात्मा प्रदत्त ही हैं। सोम (चन्द्रमा), त्वष्टा (सूर्य) पूषा (वायु) भग (यज्ञ) आदि को भी मैं ही धारण करती हूँ।^{१०} वाक् रूपी पारमेश्वरी शक्ति के कारण ही यह भूमि टिकी हुई है। वह पारमेश्वरी शक्ति ही जगद् रूप राष्ट्र की स्वामिनी है,

वही वसुओं (धनों) को संगति देती है तथा यज्ञ रूपी श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा देने वाली है ।^{११}

यह दैवी वाक् स्पष्ट घोषणा करती है कि देवों (श्रेष्ठ पुरुषों) तथा मनुष्यों (सामान्य जनों) को उनका उचित प्राप्य मैं ही प्रदान करती हूँ । जिस पर मेरी कृपा दृष्टि होती है वह समय आने पर तथा अपने पुरुषार्थ से परम बलशाली (उग्र), ब्रह्मा (ज्ञानयुक्त) तथा सुमेधावान् बन जाता है ।^{१२} ऐसी उत्कृष्ट स्थिति तभी मिलती है जब परमात्मा की दया और कृपा होती है । “यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्” (११२५।५) वैदिक साहित्य की यह उक्ति परमात्मा की दिव्य शक्ति का स्वयं कथित आख्यान है।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे सखे हन्तवा उ ।

इस मन्त्र के उक्त पूर्वार्द्ध में वाक् दैवी की स्पष्ट घोषणा है कि जो दुष्ट, दुराचारी व्यक्ति सच्चे ब्राह्मण (विद्वान् तथा लोकोपकारी) से द्वेष करता है उसको समाप्त करने के लिए रुद्र संज्ञक क्षत्रिय को धुनर्धारी मैं ही बनाती हूँ । यह सम्पूर्ण द्यौलोक और पृथिवी लोक मुझ में ही समाया है । मैं ही अखिल ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हूँ, व्याप रही हूँ ।^{१३} वागाम्भृणी सूक्त वैदिक साहित्य का एक ऐसा दिव्य प्रसंग है जिसमें परमात्मा की दिव्य शक्तियों को वैदिक भाषा की भावस्फूर्त शैली में अभिव्यक्ति मिली है ।

दार्शनिक चिन्तन का चरमोत्कर्ष—

ऋग्वेद का अस्यवामीय सूक्त

उक्ति वैचित्र्य, शैली में वक्रता तथा नाना उलटबाँसियों का प्रयोग ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ५२ मन्त्रों वाले १६४ वें सूक्त में दिखाई पड़ता है । इस सूक्त की पहली ऋचा ‘अस्य वामस्य पलितस्य’ से आरम्भ होती है, इसलिए सुधी जनों में यह मन्त्र समूह अस्यवानीय सूक्त नाम से पुकारा जाता है । इस सूक्त के अनेक देवता हैं, यथा विश्वेदेवाः वाक्

शकधूमः सोम, अग्नि, वायु, सूर्य, काल, सरस्वती, साध्य, पर्जन्य आदि । अनेक देवताओं वाले इस सूक्त में विविध दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विषयों से सम्बद्ध मन्त्र हैं । स्थान संकोच से हम यहां इस सूक्त के कुछ गिने-चुने मन्त्रों को ही प्रस्तुत कर रहे हैं ।

सर्वप्रथम हमारा ध्यान बीसवें मन्त्र पर जाता है जिसमें प्रकृति रूपी वृक्ष तथा उस पर विराजमान जीव तथा ईश्वर रूपी दो शोभन पक्षियों का वर्णन किया गया है । मन्त्र इस प्रकार है—

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिष्पलं स्वाद्वत्यनश्ननन्यो अभि चाकशीति ॥**

(११६४।२०)

स्वामी दयानन्द कृत भाष्य में इस मन्त्र में रूपकालंकार माना गया है । मन्त्र का संस्कृत भावार्थ करते हुए दयानन्द लिखते हैं—“जीवेशजगत्कारणानि त्रयः पदार्था अनादयो नित्याः सन्ति । जीवेशावल्पानन्तचेतनविज्ञानिनौ सदा विलक्षणौ व्याप्यव्यापकभावेन संयुक्तौ मित्रवद्वर्तमानौ स्तः ।” अर्थात् जीव, ईश्वर तथा जगत् का उपदान कारण-प्रकृति ये तीन पदार्थ नित्य तथा अनादि हैं । जीव अल्प शक्ति वाला है, उसमें तथा ईश्वर में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है । दोनों मित्र हैं, तथापि प्रकृतिजन्य फलों को जीव खाता है जब कि परमात्मा द्रष्टामात्र है ।

प्रश्नोत्तर शैली में विज्ञान के कुछ तथ्य—

प्रश्नकर्ता पूछता है—मैं तुम से जानना चाहता हूं कि पृथ्वी का अन्तिम छोर कौन सा है, लोक समूह (निखिल भुवन मण्डल) का केन्द्र स्थल कौन सा है, अश्व का रेतः क्या है तथा परम व्योम क्या है ? उत्तर में ३५वां मन्त्र इस प्रकार है—इयं वेदि परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥

यह वेदी ही पृथ्वी का अन्त है, यह यज्ञ ही भुवनों का केन्द्र है सोमलतादि का रस ही अश्व का रेतः है तथा चतुर्वेदवित् ब्रह्मा ही वाणी का आधार स्थान है ।

४५वें सूक्त में चार प्रकार की वाक् शक्ति का उल्लेख है—

**चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्ग्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥**

स्वामी दयानन्द ने नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को चतुर्विध वाक् माना है जबकि अन्य विद्वानों ने परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी को चार प्रकार की वाणी बताया है । स्वामी दयानन्द के अनुसार वाणी के इन भेदों को व्याकरण, वेद तथा ईश्वर के ज्ञाता लोग भली भाँति जानते हैं । प्रथम तीन नाम, आख्यात और उपसर्ग रूपी वाक् बुद्धि रूपी गुहा में निहित हैं जबकि चतुर्थ निपात मात्र को साधारण मनुष्य बोलते हैं । द्वितीय अर्थ में परा, पश्यन्ती, मध्यमा ये तीन वाणी के अप्रत्यक्ष रूप हैं जबकि जन सामान्य वैखरी वाणी का प्रयोग करते हैं ।

**जिसने वेद प्रतिपादित परमात्मा को नहीं जाना
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥**

११६४।३९

ऋग्वेदादि चारों वेदों का विनाशरहित, न क्षरण होने वाला (अक्षर) ज्ञान विश्वाधार परमात्मा में निहित है, आधेय रूप में स्थित है । जो उस परम ब्रह्म को नहीं जानता, उसका वेद ज्ञान भी क्या भला करेगा ? जो ब्रह्म को सम्यक् रीत्या जानते हैं, वास्तव में वे ही तत्त्ववेत्ता हैं ।

एक परमात्मा के अनेक नाम

वैदिक एकेश्वरवाद का प्रतिपादक यह प्रसिद्ध मन्त्र

इसी सूक्त में है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

११६.४।४६

आलोच्य मन्त्र के भावार्थ में दयानन्द सरस्वती लिखते हैं— “यथाऽग्न्यादि इन्द्रादीनि च नामानि सन्ति तथैकस्य परमात्मनो अग्न्यादीनि सहस्रशो नामानि वर्तन्ते । यावन्तः परमेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावाः सन्ति तावन्त एवैतस्य नामधेयानि सन्तीति वेद्यम् ॥

अर्थात् अग्नि, इन्द्रादि जो वेदोक्त परमात्मा के नाम हैं उन्हीं की भाँति परमात्मा के हजारों नाम हैं । परमेश्वर के जितने गुण, कर्म, स्वभाव हैं उतने ही उसके नाम हैं । प्रो० मैक्स्मूलर तथा अन्य पाश्चात्य वेदज्ञों ने प्रारम्भ में कहा था कि वेदों में एकाधिक देवों की उपासना वर्णित है, किन्तु उक्त मन्त्र ने उन्हें यह स्वीकार करने पर मज्जबूर कर दिया कि वेदों में सर्वत्र एक ही ईश्वर की पूजा-उपासना वर्णित है । विभिन्न देवता उसी एक, अद्वितीय परमात्मा के गौण नाम हैं जो उसकी विभिन्न शक्तियों तथा विभूतियों के परिचायक हैं ।

मोक्ष तथा पुनर्जन्म

स्वामी दयानन्द ने मोक्ष तथा उसके कारणों का विवेचन सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में किया है । यहां उन्होंने विद्या तथा अविद्या विषयक याजुष श्रुति विद्यां चाऽविद्यां च (४०।१४) को उद्धृत कर ‘विद्ययाऽमृतमश्नुते’—यथार्थ ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होना बताया है । मुक्ति की शाब्दिक व्युत्पत्ति करते हुए वे लिखते हैं— ‘मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः ।’ जिसमें छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है । मुक्ति और बन्ध के कारणों का विचार करने के पश्चात् उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मुक्तावस्था में जीव का ब्रह्म में लय नहीं होता । ‘उन्होंने साधन चतुष्य-विवेक, वैराग्य षट्कसम्पत्ति

(शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान), तथा मुमुक्षुत्व को मोक्ष का साधन बताया तथा योगदर्शन प्रोक्त अष्टांग योग की साधना को मुक्ति का प्रमुख हेतु बताया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि, योग के आठ अंग हैं।

ऋग्वेद में मोक्ष का विवेचन प्रायः परोक्ष रूप में ही हुआ है। तथापि मुक्तावस्था से पुनरागमन के विषय को यहाँ स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। मुक्ति से पुनरावृत्ति का विषय स्वामी दयानन्द की मौलिक ऊहा थी जिसे उन्होंने ऋग्वेद (१२४।१,२) के आधार तथा अनेक युक्तियों से सिद्ध किया था।

का स्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दीत्यितरं च दृशेयं मातरं च ॥

१२४।१

इसमें भक्त की जिज्ञासा है कि वह कौन देव है जो हमें जन्मान्तर में माता-पिता के पुनः दर्शन कराता है। उत्तर में दूसरा मन्त्र अग्नि परमात्मा को जीवात्मा को पुनर्जन्म प्रदान करने तथा साथ ही मुक्तावस्था के भोग के पश्चात् पुनः संसार में पुरुषार्थ हेतु भेजने वाला देव कहता है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने इन दोनों मन्त्रों से जीवों के पुनर्जन्म तथा मोक्ष से पुनरावृत्ति को सिद्ध किया है। यह ज्ञातव्य है कि ऐतरेय ब्राह्मण^{१४} तथा बृहदेवता आदि ग्रन्थों में इन मन्त्रों के आधार पर अजीर्त के पुत्र शुनःशेष को वरुण के लिए बलि देने की कल्पित कथा को पल्लवित किया गया। सायणादि भाष्यकारों ने भी इसी सरणि को अपना कर मोक्ष तथा पुनर्जन्म का विवेचन करने वाले इन मन्त्रों का अन्यथा विचार किया है।

स्वामी दयानन्द ने पुनर्जन्म की पुष्टि में ऋग्वेद (१०।५९।६.७)^{१५} के मन्त्रों को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार इन मन्त्रों में जीवात्मा की परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उसे नवीन जीवन प्रदान करे ताकि वे नेत्रादि इन्द्रियों, प्राण,

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, बल, पराक्रम युक्त शरीर को पुनः प्राप्त करें। इसी प्रकार पृथिवी आदि तीनों लोकों द्वारा प्राणों की शक्ति प्राप्त होना तथा पोषक-(पूषन्) परमात्मा से स्वस्ति की प्राप्ति बताई गई है।

ऋग्वेदीय मनोविज्ञान

मन की चंचलता तथा उसका निग्रह दार्शनिकों की एक मुख्य समस्या रही है। यजुर्वेद का शिव संकल्प प्रकरण^{१६} इसी तथ्य को रेखांकित करता है कि जागृत एवं सुप्तावस्था में सक्रिय रहने वाला हमारा यह मन शिव संकल्पों वाला कैसे बनाया जा सकता है। मनुष्य के बन्धन और मोक्ष के कारण—भूत मन की चंचलता तथा अस्थिरता को योगेश्वर कृष्ण ने भी स्वीकार किया तथापि उन्होंने अभ्यास और वैराग्य की साधना के द्वारा मनोनिग्रह को साध्य बताया है।^{१७} ऋग्वेद के दशम मण्डल का ५८वां सूक्त मन के आवर्तन पर विचार प्रस्तुत करता है। दशम मण्डल के भाष्यकार स्वामी ब्रह्ममुनि ने इस सूक्त की प्रस्तावना में लिखा है—“इस सूक्त में भ्रान्त मन का यथास्थिति में लौटाना, भ्रान्ति से विविध स्थानों (स्थितियों) में भटकता मन अव्यवस्थित दुःख पाता है, उसे विविध उपचारों तथा आश्वासनों से स्वस्थ करना बताया है।”^{१८}

वस्तुतः मानसिक रोगों की चिकित्सा भी मन के सशक्तिकरण से ही होती है। मन के भटकाव को दूर करने के लिए वाचिक आश्वासन भी उपयोगी सिद्ध होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर इस सूक्त के सभी मन्त्रों की टेक है—

तत्त आ वर्त्यामसीह क्षयाय जीवसे ।

जो मन निरन्तर भटकता है, अस्थिर है उसे हम लौटा लाते हैं, स्थिर करते हैं ताकि हे जीव, तू इस शरीर में दीर्घकाल तक रह सके। मन के भटकने के स्थलों की भी कमी नहीं है। इस सूक्त के अनुसार काल, विभिन्न लोक, पृथ्वी के

विभिन्न भाग, चतुर्दिक्, सागरादि जलाशय, औषधि-वनस्पति, पर्वतादि विषयक स्थल, मन के भटकने के आधार स्थान बनते हैं। निष्कर्ष रूप में सूक्त के अन्तिम मन्त्र में कहा गया है कि विगत में घटी घटनाओं तथा भविष्य के मनसूबों को लेकर मन का आवर्तन, विवर्तन, गमनागमन, यत्रतत्र विचरना स्वतः सिद्ध है। हमारे प्रबोधक विद्वान् अपने सत्परामर्श से इस मन को स्थिर होने में सहायक बनते हैं। यह मन्त्र निम्न है—

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाय दूरकम् ।

तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥

१०।५।१२

मन की चंचलता के वशवर्ती है मनुष्य, जो तेरा मन विगत तथा अनागत भविष्य के बारे में सोच कर चिन्तित रहता है हम उसे लौटा लाते हैं तथा स्थिर करते हैं। एक प्रकार की यह मानस चिकित्सा है।

दर्शन का लक्ष्य-मृत्यु पर विजय

दर्शन के अध्ययन तथा चिन्तन का प्रयोजन मात्र बुद्धिविलास नहीं है। भारतीय वैदिक दर्शन में त्रिविध दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति, मृत्यु के भय पर विजय तथा अमृतत्व की प्राप्ति को दर्शन का चरम उद्देश्य माना गया है। ‘सा विद्या या विमुक्तये’ की उक्ति भी यही संकेत देती है कि दर्शनशास्त्र (विद्या) का प्रयोजन मानव को मुक्ति दिलाना है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का १८वां सूक्त मृत्यु के भय से मानव को मुक्त रहने की बात करता है। प्रथम मन्त्र में कहा गया है—
परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥

हे मृत्यो ! तू भिन्न मार्ग की ओर जा। मुमुक्षुत्व को चाहने वाले साधक का मार्ग तो देवयान है जो उसे मोक्ष की ओर ले जाने वाला है। हमारी प्रजाओं तथा वीरों को नष्ट मत कर।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धा पूता भवत यज्ञियासः ॥

१०।१८।२

जिन मुमुक्षु जनों ने अपने जीवन को यज्ञीय बना लिया है, वे मृत्यु के भय से किञ्चित् मात्र भी विचलित नहीं होते। वे दीर्घायु प्राप्त करते हैं तथा सन्तान एवं धन प्राप्त करते हुए अपने जीवन को शुद्ध एवं पवित्र बनाते हैं। इस प्रकार वैदिक दर्शन मानव को निराशा और दुःखवाद से मुक्त कर रचनात्मक तथा विधेयात्मक जीवन जीने की प्रेरणा करता है। तभी तो जीवात्मा की इस वैदिक घोषणा को सुनें—अहमिन्द्रो न पराजिये न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन ।^{१०} मैं शक्तिशाली इन्द्र हूं। मैं जरा-मृत्यु के भय से भयभीत होने वाला, पराजित मनोवृत्ति वाला नहीं हूं।

पादटिप्पणियाँ-

१. ‘कस्मै देवाय’ इस मन्त्रांश के स्वामी दयानन्द ने निम्न प्रकार अर्थ किये हैं—

(अ) ‘हिरण्यगर्भ’ मन्त्र में—हम लोग इस सुख स्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

(आ) य आत्मदा मन्त्र में—हम लोग सुख स्वरूप सकलज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन में तत्पर रहें।

(इ) ‘यः प्राणतो’ मन्त्र में—हम लोग उस सुखस्वरूप सकलतैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके विशेष भक्ति करें।

(ई) ‘येन द्यौरुगा’ मन्त्र में—हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में “सहस्राण्यसंख्यातान्यस्मदादीनां शिरांसि यस्मिन्यूर्णे पुरुषे परमात्मनि स सहस्रशीर्षा पुरुषः ।”

सृष्टि-विद्याविषयः

३. एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३१।३
४. 'तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादिलक्षणात्पूर्णत्पुरुषात् सर्वहुतात्सर्व-
पूज्यात्सर्वोपास्यात्सर्वशक्तिमतः' परब्रह्मणः' ऋ० भा० भू० का वेदोत्पत्ति
प्रकरण ।
५. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्म्यां शूद्रो अजायत ॥ ३१।११
६. यजुर्वेद ३१।१२
७. यजुर्वेद ३१।१३
८. यजुर्वेद ३१।१६
९. 'अहं रुद्रेभि' आदि ८ मन्त्र
१०. १०।१२५।२ 'अहं सोममाहनसम्' आदि
११. १०।१२५।३ 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' आदि
१२. १०।१२५।५ 'अहमेव स्वयमिदं वदामि' आदि
१३. १०।१२५।६ 'अहं रुद्राय धनुरातनोमि' आदि
१४. सप्तम पञ्चिका-तीसरा अध्याय
१५. 'असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः' तथा पुनर्नां असुं पृथिवी
ददातु' आदि
१६. यजुर्वेद अध्याय ३४।१-६
१७. भगवद्गीता-'चञ्चलं हि मनः कृष्ण' तथा 'असंशयं
महाबाहो' आदि अ० ६।३४, ३५
१८. ब्रह्ममुनि परिक्राजक का ऋग्वेद दशम मण्डल का भाष्य
(प्रथम खण्ड) परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा २०३१ वि०में० प्रकाशित
१९. अथ त्रिविधुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः । सांख्य १।१।१
२०. ऋग्वेद १०।४८।५

अध्याय ४

ऋग्वेदीय आचार-मीमांसा

वैदिक चिन्तन की यह विशेषता रही है कि इसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, आचार तथा नीति की विविध तथा मानव के सर्वांगीण उत्थान में सहायक धाराएं एक साथ प्रवाहित होती दिखाई देती हैं। वैदिक दर्शन केवल मनोविलास की वस्तु नहीं है। वैदिक धर्म शुष्क कर्मकाण्ड का पुञ्ज नहीं है। यहां मनुष्य को श्रेष्ठ आचरण करना सिखाया जाता है। जीवन में पवित्रता, सदाचरण तथा नीतिमत्ता लाना वैदिक आचार-शास्त्र का प्रमुख प्रयोजन है। एतदर्थं उन आचरणगत तथा नीतिगत मूल्यों को वैदिक साहित्य में महत्त्व दिया गया है जो मानव की सर्वतोमुखी उन्नति में सहायक हो सकते हैं। यहां ऋग्वेद के कतिपय सन्दर्भों के आधार पर वैदिक आचार शास्त्र के गणनीय आयामों की समीक्षा प्रस्तुत है।

वैदिक जीवन-पद्धति में ज्ञानोपार्जन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। उक्ति प्रसिद्ध है कि ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है।^१ कृष्ण का गीता में प्रसिद्ध कथन है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।^२

ज्ञान के समान अन्य कोई पवित्र वस्तु नहीं है। वेदों में ज्ञान और कर्म, तर्क और श्रद्धा, आस्था तथा अन्वेषण को तुल्य महत्त्व दिया गया है। ज्ञान की प्रशंसा में दशम मण्डल का ७१वां सूक्त माननीय तथा विचारणीय है। यहां इस प्रसंग के कुछ मन्त्रों की विवेचना अपेक्षित है। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र बताता है कि दिव्य वेद ज्ञान के आदिम स्रोत हैं। यह दिव्य ज्ञान बृहस्पति संज्ञक परमात्मा से मानव को दिया गया।

**बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्पैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥**

जिस ज्ञान को बृहस्पति (वेदवाणी के स्वामी) परमात्मा से परमऋषियों ने प्राप्त किया वह उन अग्न्यादि ऋषियों की श्रेष्ठ सम्पत्ति थी जिन्होंने अपनी हृदय रूपी गुहा में उसे धारण किया था । यद्यपि वेदवाणी ईश्वरीय तथा अपौरुषेयीय है तथापि तत्त्वज्ञ ऋषियों ने अपनी मेधा की चलनी से छान कर उसे सम्यक् प्रकार शोधा है ।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।

(१०।७।१२)

सत्तुओं को जैसे छलनी से शोधा जाता है उसी प्रकार धीर बुद्धि वाले ऋषियों ने वेदवाणी का सम्यक् अवगाहन कर उसे जिज्ञासुओं के लिए प्रकट किया । वेदज्ञान या वेद वाणी की महिमा भी विचित्र है। इसका परिपूर्ण अवगाहन करने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियों को संयत, समाहित तथा केन्द्रित करना पड़ता है । ऊपरी तौर पर पढ़ने से वेद का रहस्य जाना नहीं जाता । वेदवाणी की विचित्रता इसमें है कि मात्र नेत्रों से देख कर (पढ़कर) इसका रहस्य नहीं जाना जाता । केवल सुनकर भी वेद के रहस्य को कोई हृदयंगम नहीं कर पाता । सच तो यह है कि वेद का रहस्य एकनिष्ठ मुमुक्षु के समक्ष उसी प्रकार प्रकट होता है जिस प्रकार पतिव्रता नारी अपने आन्तरिक सौन्दर्य को स्वपति के आगे प्रकट करती है—जायेव पत्य उशती सुवासा: ॥१०।७।१४ वैदिक आचार शास्त्र में जितना ज्ञान का महत्त्व है, श्रद्धा का भी उतना ही महत्त्व है ।

ऋग्वेद के दशम मण्डल का १५१ वां सूक्त श्रद्धा देवता को समर्पित है । कामायनी श्रद्धा इस सूक्त की ऋषिका है ।^३ पांच मन्त्रों के इस लघु सूक्त में श्रद्धा को महिमान्वित किया गया है—

श्रद्धयामिः समिध्यते श्रद्धया हृयते हविः ।

श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥

(११५।१।१)

जिनके कार्य श्रद्धापर्वक किये जाते हैं, वे ही साधक

उत्कृष्ट ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। इस नियम से श्रद्धापूर्वक होमाग्नि को प्रज्वलित करना तथा उसी श्रद्धा भाव से वेदी में होम द्रव्य की आहुति देना आवश्यक है। यह श्रद्धा भाव ही यजमान को इच्छित फल देता है। श्रद्धाभाव को सदा धारण करना चाहिए। श्रद्धा भावान्वित होने का कोई निश्चित समय नहीं है। प्रातः, दिन के मध्य भाग में, सूर्य के अस्ताचल की ओर जाते समय सर्वदा श्रद्धा भावना को हृदय में धारण रखना चाहिए।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।

श्रद्धां सूर्यस्य निष्ठुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

११५१५

मन्यु (स्वाभिमान) का उदात्त भाव

वैदिक आचार मीमांसा में जहाँ शान्ति, सहनशीलता, अक्रोध तथा विश्व बन्धुत्व के भावों को प्रधानता मिली है, वहाँ यथावश्यकता उग्रता, तेजस्विता, शौर्य, वीर्य, पराक्रम तथा दुष्टों के दलन को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है। यहाँ ब्रह्म और क्षत्र, शास्त्र और शास्त्र, दया और दण्ड को समान रूप से उपयोगी माना गया है। सामान्य क्रोध जहाँ मनुष्य में सम्पोह पैदा करता है तथा उसे क्रमशः स्मृतिभ्रंशता, बुद्धिनाश तथा सर्वनाश की स्थिति तक पहुंचा देता है वहाँ स्वाभिमान रूप मन्यु का भाव राष्ट्र संचालन तथा समाज के हित के लिए आवश्यक माना गया है। दशम मण्डल का ८३वाँ सूक्त इसी उग्रता, तेजस्विता तथा क्षात्र संस्कारों के प्रतीक मन्यु की वन्दना करता है। मनुष्य के मन में रहने वाला यह मन्यु भाव विषम स्थितियों को अनुकूल बनाता है, अन्यों को प्रभावित करता है तथा आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं को दबाता है। अतः विशेष परिस्थितियों में मन्यु या सात्त्विक क्रोध भी स्पृहणीय होता है।

मानव का विशिष्ट गुण : दानशीलता

मानव का विशेष गुण उसकी दानशीलता है। बुद्धि एवं विवेक का धनी होने के कारण विचारशील मनुष्य जानता है कि जिस विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति तथा अन्य साधनों को उसने अपने बल, श्रम तथा अध्यवसाय से संचित किया है, यदि इन्हें वह उन लोगों को भी प्रदान करें, जिनको इनका अभाव है तो वह सचमुच एक प्रशंसायोग्य कार्य करेगा। यही कारण है कि वैदिक शास्त्रों में सात्त्विक दान की सर्वत्र प्रशंसा की गई है ।^{१८} दान की महिमा बताने वाले वेद मन्त्रों, उपनिषद्-वाक्यों, गीता-महाभारतादि इतिहास तथा नीतिग्रन्थों के श्लोकों की कोई कमी नहीं है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ११७वें सूक्त का प्रसिद्ध मन्त्र है—**न स सखा यो न ददाति सख्ये** (१०।१७।४) वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है जो अपने सहयोगी मित्र की सहायता नहीं करता, उसके अभाव की पूर्ति के लिए मित्र को इच्छित वस्तु का दान नहीं करता। इसी सूक्त का एक अन्य मन्त्र भी अन्न दान प्रशंसा का है—**मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वथ इत्स तस्य । नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥**

(१०।१७।६)

अज्ञानी व्यक्ति तो व्यर्थ ही अन्न धन का संचय करता है। वेद की सत्योक्ति है कि ऐसा धन उसका घातक ही है जो व्यक्ति इस प्रकार एकत्र किये अन्नधन से किसी विद्वान् या अपने मित्र की सहायता नहीं करता, वह अकेला भोग करने वाला मानो पाप को ही खाता है। इसी मण्डल के १४१वें सूक्त के अन्तिम दो मन्त्रों में देवताओं (दिव्य शक्तियों) से प्रार्थना की गई है कि वे विद्वानों का सत्कार करने के लिए धनी जनों को दान करने की प्रेरणा दें—**त्वं नो देवतातमे रायो दानाय चोदय । महाप्राज्ञ विदुर के अनुसार जो धनी होकर भी दान नहीं करता उसे तो गले में शिला बांध कर जल में डुबो देना ही उचित है ।**

वैदिक आचार शास्त्र का सार तत्त्व है—शास्त्रों के आदेशों के अनुसार आचरण करना । मन्वादि स्मृतिकारों ने जहां आचार को परम धर्म कहा वहां उस आचार को ग्रहण करने की बात कही जो श्रुति कथित है तथा आर्ष स्मृतियों द्वारा अनुमोदित है ।^६ आचार वर्जन के कारण ही विप्र गणों को मृत्यु ने नष्ट कर दिया ।^७ वेद का आदेश है कि हम न तो देवजनों के आदेशों की अवहेलना कर उन्हें पीड़ा पहुंचायें और न धर्मकृत्यों का लोप करें । हमारे लिए तो यही उचित है कि हम मन्त्रानुकूल कार्य करें—

नकिर्देवा मिनीमसि न किरा योपयामसि ।

मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ १०।१३।४।७

वैदिक आचार शास्त्र की यह विशेषता है कि वह शास्त्रानुकूल कार्य करने को उचित मानता है । इस मन्त्रव्य के पीछे युक्ति यह है कि शास्त्रवेत्ता ऋषियों ने आचार के जो मानदण्ड बनाये हैं उनमें किसी प्रकार के पक्षपात, मताग्रह तथा संकीर्णता को स्थान नहीं मिला है । गीता में कृष्ण ने अपने सम्पूर्ण कार्यों को शास्त्रीय विधान के अनुकूल करने की प्रेरणा दी है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यं व्यवस्थितौ ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

१६।२३, २४

जो व्यक्ति शास्त्र के विधान को छोड़कर मनमाना आचरण करता है, उसे न तो सिद्धि मिलती है, न सुख और न उत्तम गति । अतः हे अर्जुन-कार्य और अकार्य—क्या करना है और क्या नहीं करना है इसमें शास्त्र ही प्रमाण हैं । अतः शास्त्र के विधान को जानकर ही तुझे कार्य करना चाहिए ।

पाद-टिप्पणियाँ-

१. ऋते ज्ञानान् मुक्तिः ।

२. भगवद्गीता ४।३८

३. श्रद्धा कामायनी को प्रमुख पात्र बना कर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि स्व० जयशंकर प्रसाद ने अपना प्रसिद्ध महाकाव्य कामायनी लिखा है । इसकी कथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मनु तथा उससे सम्बद्ध प्रलय के उपाख्यान पर आधारित है ।

४. क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥

गीता २।६३

५. दातव्यमिति यदानं दीयतेऽनुपकारिणे ।

देशो काले च पात्रे च तदानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

गीता १७।२०

६. आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।

मनु० १।१०८

७. अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।

आलस्यादन्दोषाच्च मृत्युर्विप्राज्जिघांसति ॥ मनु० ५।४

अध्याय ५

ऋग्वेद के सामाजिक सरोकार

आधुनिक युग में वेदों की चर्चा के पुनरुद्धारक स्वामी दयानन्द ने जब वेदों को समस्त विद्याओं का मूल उत्स तथा विविधं ज्ञान-विज्ञान का आदि स्रोत बताया तो उनका अभिप्राय यही था कि इन सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थों में व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, यहां तक कि सम्पूर्ण मानवता एवं प्राणि-जगत् के हित की बातें कही गई हैं। वेदों का आध्यात्मिक (पारमार्थिक) और व्यावहारिक—दो शैलियों में भाष्य करने का उनका उद्देश्य यही सिद्ध करना था कि अन्ततः वेदमन्त्र जहां निखिल ब्रह्माण्ड के स्वष्टा परमात्मा का वर्णन करते हैं, वहां उनमें मानव के जीवन को उन्नत करने तथा उसे सत्पथगामी बनाने के उपदेश भी विद्यमान हैं। जब हम ऋग्वेद के सामाजिक सरोकारों की बात करते हैं तो विदित होता है कि मनुष्य के परिवार तथा समाज को दरपेश अनेक समस्याओं पर इस वेद के विभिन्न सूक्तों में विचार किया गया है तथा उसे समुचित मार्गदर्शन दिया गया है।

विवाह-संस्था—

समाज और परिवार के दो प्रमुख घटक हैं—स्त्री और पुरुष। विवाह सम्बन्ध में बन्धकर ये दोनों एक दूसरे के समीप आते हैं तथा मिल कर अपना कर्तव्य निर्वहन करते हैं। विवाह संस्कार के द्वारा दाम्पत्य सूत्र में बंधने की प्रथा भी उतनी ही पुरानी है जितना वेदाधारित आर्यों का समाज पुराना है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का ८५वां सूक्त विवाह संस्कार में की जाने वाली विविध क्रियाओं तथा नवदम्पती को दिये जाने वाली

शिक्षाओं से सम्बन्धित है। यहां सूर्या (सविता की पुत्री) के विवाह के व्याज से युवती कन्या द्वारा पति को प्राप्त करने, तत् पश्चात् उनके द्वारा गृहस्थ के दायित्वों को निभाने विषयक अनेक मन्त्र आये हैं। जिन मन्त्रों को विवाह संस्कार में समाविष्ट किया गया है वे निम्न हैं—

दम्पती को आशीर्वाद का मन्त्र—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।

सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं वि परेतन ॥ १०।८५।३३

हे आगन्तुको, इस नव विवाहित मंगलमयी वधू को आप पति सहित देख रहे हैं। इसे आप सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दें, पुनः अपने अपने घरों के लिए विदा हों।

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्या वहतुना सह ।

पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥

१०।८५।३३

यज्ञाग्नि की साक्षी से वर वधू को ग्रहण करता है। यह प्रजा वृद्धि के लिए किया जाने वाला संस्कार है।

पाणिग्रहण का मन्त्र

गृण्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गाह्पत्याय देवाः ॥

१०।८५।३६

वधू के हाथ को ग्रहण करते समय पति कहता है—हे वधू ! मैं तेरा पति सौभाग्य के लिए तेरे इस हाथ को ग्रहण करता हूँ। वृद्धावस्था पर्यन्त तू मुझ पति के साथ दाम्पत्य सम्बन्धों का आनन्दपूर्वक उपभोग करना। भग, अर्यमा, सविता, आदि नामों वाले परमात्मा ने तुझे मुझ पति को प्रदान किया है।

पाणिग्रहण के समय पति का पत्नी को सम्बोधन—
अघोरचक्षुरपतिष्ठ्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

१०।८५।४४

हे मंगलमयी वधू ! तू प्रियदर्शना है, पति को पीड़ित करने वाली नहीं है । परिजनों तथा गौ आदि पशुओं के लिए कल्याणकारिणी है । तू शोभन मन वाली तथा तेजस्विनी है । वीर सन्तानों की भावी जननी तथा देवरादि की हित कामना करने वाली है । सौभाग्य वाली तू सभी के लिए सुखप्रदा हो ।

पाणिग्रहण के समय वर वधू की मंगल कामना वाला मन्त्र—

समज्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥

१०।८५।४७

सभी दिव्य शक्तियां तथा विद्वान् जन इन वर वधू को एक समान मन, बुद्धि, चित्त वाला बनाये । जिस प्रकार जल जल से मिल कर एक हो जाता है उसी प्रकार इनके हृदय परस्पर मिले रहें । मातरिश्वा तथा धाता नामों वाला परमात्मा इन्हें सब साधनों से संयुक्त करे ।^१

विवाहसंस्कार समाप्त होने पर उपस्थित पुरोहित वर्ग तथा अन्य वृद्धजनों द्वारा नव दम्पती को निम्न प्रकार उद्बोधन तथा स्व कर्तव्य करने की प्रेरणा दी जाती है—

(१) प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्---सह पत्या दधामि ॥

(१०।८५।२४)

हे वधू, अब तू अपने पिता के स्नेह बन्धन से मुक्त होती है । हम तुम्हें पति के गृहस्थ में प्रविष्ट होने की अनुमति देते हैं ।

(२) प्रेतो मुञ्चामि नामुतः-----सुपुत्रा सुमगासति ॥

(१०।८५।२५)

हे वधू मैं (पुरोहित) तुम्हें पिता के कुल से पृथक् करता हूं, पतिगृह से नहीं, जहां रह कर तुम्हें पुत्रवती तथा सौभाग्यशालिनी बनना है ।

(३) इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यशनुतम् ।

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

(१०।८५।४२)

हे वर वधू, आप दोनों इसी गृहाश्रम में स्थिर रहो, तुम्हारा वियोग कदापि न हो । तुम समग्र (पूर्ण) आयु भोगो । पुत्र-पौत्रों, नाती-नतिनी के साथ अपने घर में आनन्द सहित रहो ।

(४) सप्राज्ञी श्वसुरे भव सप्राज्ञी श्वश्रवां भव ।

ननान्दरि सप्राज्ञी भव सप्राज्ञी अधिदेवृषु ॥

(१०।८५।४६)

हे वधू, तू अपने सुन्दर व्यवहार से अपने श्वसुर, सास, ननदों तथा देवरों में सप्राज्ञी के तुल्य सम्मान और स्नेह प्राप्त कर । वधू को सप्राज्ञी कहना वेद की नारी के प्रति उदात्त भावना दर्शाता है ।

विवाहित दम्पतियों के सफल भावी जीवन के लिए अनेक उपदेश ऋग्वेदीय सूक्तों में मिलते हैं । दशम मण्डल के १२५ वें सूक्त का देवता दम्पती^२ है । सात मन्त्रों के इस सूक्त में गृहस्थ दम्पतियों को स्वकर्तव्यों का पालन करते हुए धनोपार्जन करने तथा पुत्र-पौत्रादि सुसन्तान सहित धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी गई है । १७९ वें सूक्त के ऋषि लोपामुद्रा तथा अगस्त्य हैं । इतिहास में इन्हें पति-पत्नी माना गया है । इस सूक्त में पति-पत्नी के संवाद के व्याज से दम्पतियों के कर्तव्य बताये गये हैं । वेदों की इतिहास परक व्याख्या करने वालों ने इस सूक्त को अगस्त्य-लोपामुद्रा का ऐतिहासिक संवाद माना है ।^३ इसी प्रकार इसी दशम मण्डल के १५९वें सूक्त में नारी के गौरव का कथन है ।

पितरों (वृद्धजनों) की सेवा

गृहस्थ के विभिन्न कर्तव्य कर्मों में परिवारस्थ माता-पिता तथा अन्यान्य वृद्धजनों की सेवा को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। दशम मण्डल का १५वाँ सूक्त पितर देवों को समर्पित है।

उपहूताः पितरः सोम्यासो (१०।१५।५) मन्त्र में विद्वान्, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध गुरुजनों को अपने यहाँ सादर आमन्त्रित करने, उन्हें उच्चासन पर बिठाने तथा उनसे प्रश्नोत्तर पूर्वक ज्ञानोपार्जन करने का उपदेश है। पितरों की सेवा को स्मृतिकार मनु ने पितृथज्जन नाम से पञ्चमहायज्ञों में उल्लिखित किया।^५ ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद में पितृ तर्पण विषयक अनेक मन्त्र आये हैं।^६ पं० प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक) ने स्वरचित यमपितृपरिचय^७ में इस विषय की गम्भीर समीक्षा की है। इस ग्रन्थ में लेखक ने चारों वेदों में आये यम और पितर विषयक मन्त्रों की विस्तारपूर्वक समीक्षा की है।

जीवन में नारी की विविध भूमिकाएं

ऋग्वेद के १२६वें सूक्त के सप्तम मन्त्र में बह्यवादिनी नारी का वर्णन है। स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र को शासन करने में समर्थ सुयोग्य रानी के कथन के रूप में प्रस्तुत किया है।

उपोप मे परा मृश मा मे दध्राणि मन्यथाः ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥

मन्त्र के हिन्दी भावार्थ में वे लिखते हैं—“यह राजा-रानी के संवाद का प्रसंग है रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आपसे न्यून नहीं हूं। जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो, वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करने वाली हूं और जैसे पूर्वकाल में राजाओं की नारियां प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करने वाली हुई, वैसी मैं भी होऊं।”^८

वीर नारी की गर्वोक्ति

दशम मण्डल के १५९ वें सूक्त की देवता पौलोमी

शची है । यहां तीसरे मन्त्र में वीर प्रसविनी नारी की गर्वोक्ति प्रशंसनीय है । जब वह कहती है—

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।

उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

१०।१५९।३

मेरे पुत्र शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हैं । मैंने उन पुत्रों को जन्म दिया है जो युद्ध में अपना बल, वीर्य और पराक्रम दिखला कर शत्रुओं को पराजित करते हैं । मेरी कन्या भी पराक्रमशीला तथा ज्योतिपुञ्ज है । वह जिस घर की वधू बनेगी उसे अपने ज्ञान, गुण तथा चारित्र्य से प्रकाशित कर देगी । मेरे पति का यश सर्वत्र प्रशंसनीय है । वे इतने उत्तम चरित्र वाले हैं कि उनकी प्रशंसा सर्वत्र होती है । वेदों में नारी के गौरव को सर्वत्र शलाघा पूर्वक वर्णित किया है ।

राष्ट्रोत्थान में सहायक तीन देवियां :

इडा, सरस्वती, मही

ऋग्वेद तथा अन्यत्र भी राष्ट्र और समाज को उन्नति दिलाने में सहायक तीन देवियों की चर्चा आती है । ये देवियां हैं—इडा, सरस्वती और मही । पञ्चम मण्डल के ५वें सूक्त का आठवां मन्त्र निम्न है—

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।

बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद १।१३।९ में भी है ।

स्वामी दयानन्द ने इडा को विद्या का प्रतीक, सरस्वती को वाणी का वाचक तथा मही को भूमि का सूचक माना है । वे इनको सुखप्राप्त कराने वाली मानते हैं । अन्य व्याख्याकारों ने इन्हें क्रमशः संस्कृति, भाषा तथा मातृभूमि का प्रतीक माना है । प्रत्येक स्थिति में यह स्पष्ट है कि किसी भी समाज या राष्ट्र की उन्नति उस देश और समाज के नागरिकों की विद्या, सभ्यता, संस्कृति, उनके स्वभाषा तथा स्वदेश के प्रति अनुराग

पर टिकी रहती है। राष्ट्र के निवासियों का जीवन दर्शन, उनका चिन्तन तथा विचारधारा संस्कृति के प्रमुख तत्त्व हैं जब कि स्वभाषा (मातृभाषा, राष्ट्रभाषा) की उन्नति उनमें स्वदेश के प्रति अनुराग का भाव जगाती है। वस्तुतः वेद की संस्कृति ही विश्व संस्कृति है और वेद की भाषा प्रचलित संस्कृत से भिन्न वैदिक संस्कृत है। लौकिक और वैदिक संस्कृत का भेद स्पष्ट है। वैदिक शब्दों का अर्थ उनकी धातुओं को देखकर किया जाता है। धात्वर्थों की भिन्नता के कारण वैदिक शब्दों के भी अनेक अर्थ होते हैं। अतः वेदों में प्रयुक्त गो शब्द गाय, वाणी, सूर्य, रश्मियां तथा पृथ्वी आदि अर्थों को देता है। 'अहि मात्र सांप का वाचक नहीं, मेघ का अर्थ भी देता है। मातृभूमि की महिमा का गायन अथर्ववेद के भूमिसूक्त (१२११) में विस्तार से किया गया है।

देश का प्रशासन और राज व्यवस्था

आजकल राजनीति शास्त्र और प्रशासन व्यवस्था का अध्ययन कराते समय यही बताया जाता है कि आरम्भिक समाज अराजकता की स्थिति में जीता था और राज्य या दण्ड की कोई व्यवस्था न होने के कारण लोग स्वेच्छाचरण में लिप्त थे। वेद की धारणा भिन्न प्रकार की है। यहां यह कहा गया है कि परमात्मा ने जहां वेदों में मनुष्यों के भिन्न भिन्न क्षेत्रों और भूमिकाओं में किये जाने योग्य कर्मों का विधान किया है, वहां उसे राज्य संचालन, न्यायपूर्वक प्रजा पालन तथा अपराधों के निग्रह करने का भी उपदेश दिया है। राजनीति, प्रशासन तथा न्याय-व्यवस्था विषयक अनेक प्रसंग वेद सहिताओं में बिखरे पड़े हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल का १७३ वां सूक्त राज्ञः स्तुतिः (राजा की स्तुति) विषयक है।

वेद की दृष्टि में सफल राजा (शासक) वही माना जाता है जो अपनी जनता में लोकप्रिय है तथा प्रजा जिसे चाहती है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र का उत्तरार्द्ध निम्न है—

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ।

हे राजन् ! यह सारी प्रजा तुझे चाहती है । तेरे शासन में ऐसी स्थिति कभी न आये जब प्रजा को कष्ट हो तथा वह विनाश को प्राप्त हो । ऐसा प्रजाप्रिय राजा ही अविचलित होकर राष्ट्र की रक्षा में सन्नद्ध रहता है ।

अगले मन्त्र में राजा को सम्बोधित कर कहा गया है कि वह अपने राज्य में पर्वत की भाँति स्थिर रहे तथा अपनी सत्ता से कभी च्युत न हो । सर्वेश इन्द्र की भाँति इस राजा को भी अविचलित भाव से राष्ट्र का धारण एवं संवर्धन करना चाहिए ।

इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय । १०।१७३।२

आलोच्य सूक्त के चौथे मन्त्र में संसार के अनेक सुस्थिर पदार्थों की उपमा देकर राजा को भी अपनी प्रजाओं में स्थिर रहने के लिए कहा है । सुशासन से ऐसी स्थिति नहीं आती जब राजद्रोह हो अथवा प्रजा में अराजकता तथा उत्पीड़न बढ़े । इस मन्त्र का भाव है कि जिस प्रकार द्यौलोक, पृथ्वी तथा पर्वत स्थिर हैं, यहां तक कि सम्पूर्ण जगत् ही स्थिरता लिये है—ध्रुव है, उसी प्रकार ‘ध्रुवो राजा विशामयम्’ यह सुशासक राजा अपनी प्रजाओं में अविचलित होकर अपने कर्तव्यों को निभा रहा है । राज्य में स्थिरता ज़रूरी है । शासन में अस्थिरता अराजकता तथा विनाश को जन्म देती है ।

जब सुयोग्य राजा शासन-सूत्र संभालता है तो उसकी सहायता के लिए विभिन्न योग्य पुरुष स्वतः एकत्र होकर उसके सहायक बन जाते हैं । इसी भाव को निम्न मन्त्र में व्यक्त किया गया है—

ध्रुवते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।

ध्रुवं ते इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयता ध्रुवम् ॥

१०।१७३।५

हे राजन् ! प्रशासन कार्य में समर्थ राजपुरुष वरुण तथा विद्या दान में समर्थ सुयोग्य अध्यापक (बृहस्पति), सेनाध्यक्ष

इन्द्र तथा अग्नि के तुल्य तेजस्वी सचिव तेरे इस शासनकर्य में सहायक होते हैं । वे प्रशासन में तेरी सहायता करते हैं । तू अपने को अकेला मत समझ । जब वरुण, बृहस्पति, इन्द्र तथा अग्नि के तुल्य तेजस्वी सहायकों, सचिवों तथा सेनापतियों से तेरी सभा सम्पन्न है तो तुझे किस बात का भय ? तू निर्भीक होकर राज्य संचालन में मन लगा तथा प्रजा के मन को जीता।

संग्राम-विजय : राजा का पुनीत कर्तव्य

राज्य में यदाकदा ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जब राजाओं को अन्य दुष्ट, अन्यायी तथा प्रजापीड़क पड़ौसी या दूरस्थ राजाओं से युद्ध करना पड़ता है । युद्ध की परिस्थिति को चाहे कितनी ही टाली जाये, कभी-कभी तो वह आ ही जाती है । ऐसी स्थिति में वीरता पूर्वक शत्रु को रणांगण में ललकार का उसे पराजित करना ही राजा का कर्तव्य बन जाता है । दशम मण्डल का १७३ वां सूक्त न्यायशील राजा द्वारा परिस्थिति आने पर विजय प्राप्ति हेतु संग्राम स्थल में जाने तथा अपनी विजयप्रदायिनी सेनाओं की सहायता से आततायी शत्रु के दमन की कहानी कहता है । युद्ध में विजय पताकाओं के फहराने, योद्धाओं की ललकार तथा शत्रु सैन्य पर तीखे बाणों के प्रहार का रोमांचक वर्णन इस सूक्त के निम्न मन्त्र में देखें—
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्यां उ देवा अवता हवेषु ॥

(१०।१७३।११)

हमारे राजा का ध्वज युद्धस्थल में सर्वोपरि उत्तोलित हो, हमारे सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र (बाण) विजयी हों, हमारे वीरों के बल में उत्तरोत्तर वृद्धि हो तथा सुयोग्य देवतुल्य सेनापति हमारे सहायक हों ।

इसी प्रकार की जय कामना निम्न १३ वें मन्त्र में द्रष्टव्य है—

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शार्म यच्छतु ।

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

हे सेनापतियो, आप लोग युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए सन्देश हो जाओ। तुम्हारा राजा (इन्द्र) तुम्हें सुख प्रदान करे। तुम्हारी भुजाएं शक्तिशाली हों, उनमें प्रचुर बल हो ताकि तुम किसी से पराजित न होओ तथा सर्वदा अनाधृत्य (अप्रतिहत) रहो। वैदिक वीरभावनाओं का प्रस्फुटन हम इतिहास की उन घटनाओं में देखते हैं जब भारतीय शूर वीरों ने अपने पराक्रम से शत्रुओं को युद्ध में धूल चटाई थी।

युद्ध-विद्या, सैनिक-विज्ञान तथा युद्ध के उपादान

युद्ध-विद्या एक व्यवस्थित विज्ञान है। सभी उन्नत देशों में सैनिक अकादमियां गठित हैं जहां सैनिक प्रशिक्षण का कार्य होता है। आयुध विद्या (हथियारों का प्रयोग) के अनेक सन्दर्भ ऋग्वेद में आये हैं। छठे मण्डल का १९ ऋचाओं वाला ७५वां सूक्त युद्धों में प्रयुक्त होने वाले नाना आयुधों के प्रयोग तथा युद्ध रत सैनिकों एवं सेनानायकों के कर्तव्यों का उल्लेख करता है। यहां संकेत मात्र इनकी चर्चा की जा रही है।

प्रथम मन्त्र—‘जीमूतस्येव भवति प्रतीकं’ में मेघ के समान सैनिक के धातु निर्मित कवच (वर्म) का उल्लेख है।

द्वितीय मन्त्र—‘धन्वना गा धन्वनाजिं’ में धनुष संचालन से शत्रु सेना पर विजय पाने का वर्णन है।

तीसरे मन्त्र—‘योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वन् ज्या इयं समने पारयन्ती’ में धनुष की ज्या (प्रत्यंचा=डोरी) का उल्लेख हुआ है।

चतुर्थ मन्त्र—‘अप शत्रून् विध्यतां’ कह कर शत्रुओं को त्रस्त करने की आज्ञा दी गई है।

पञ्चम मन्त्र में—‘धनुष्टंकार का उल्लेख है तथा सेनाओं की विजय कामना की गई है।

षष्ठ मन्त्र में—‘रथे तिष्ठन्यति वाजिनः’ की उक्ति में रथों पर आरूढ़ सैनिकों, रथ संचालन में कुशल सारथि तथा रथों को खींचने वाले वेगवाले अश्वों की चर्चा है।

सप्तम मन्त्र में—‘तीव्रान् घोषान्कृण्वते’ के द्वारा तीव्र घोष करने वाले रथों तथा तत्रस्थ शूरवीरों की चर्चा है ।

अष्टम मन्त्र में—‘रथवाहनं हविरस्य’ रथ संचालन में कुशल सैनिकों (सारथि) तथा उनके आयुधों का वर्णन है ।

नवम मन्त्र में—‘चित्रसेना इषुबला’ से चित्र-विचित्र अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित सेनाओं का उल्लेख है ।

दशम मन्त्र में—योग्य राजा द्वारा शासित राज्य के पोषणकर्ता परमात्मा की कृपा से सुशासित होने का उल्लेख है तथा यह आशा व्यक्त की गई है कि चोरों और तस्करों का वर्चस्व राष्ट्र में न बढ़े—माकिनों अघशंस ईशत ।

११वें मन्त्र में—‘यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति’ का संकेत कर युद्ध में सैनिकों द्वारा दौड़भाग कर शत्रु सेना को पराजित करने की बात कही गई है ।

१२वें मन्त्र में सैनिकों के प्रस्तर की भाँति सुदृढ़ शरीरों का उल्लेख है तथा भूमिमाता (अद्वितीय) द्वारा उन्हें सुख देने का उल्लेख है ।

१३वां मन्त्र बताता है कि यदि किसी कारण से राजा अपनी सेना का नेतृत्व न करें तो उसकी सुयोग्य रानी सेनापति बन कर संग्राम में विजय प्राप्त करे । नारी का यह सैनिक रूप देखें ।

१४वें मन्त्र में वज्र के समान बाणों तथा प्रत्यंचाओं का उल्लेख है ।

१५वें मन्त्र में धनुर्वेदवित्, शस्त्रास्त्र कुशल रानी का वर्णन है ।

१६वां मन्त्र वेद के तत्त्व को जानने वाले ‘ब्रह्म संशिते’ सेनापति का वर्णन करता है जो अपने वीरों को शत्रुओं पर विजय पाने के लिए रणांगण में आगे बढ़ाता है ।

१७वें मन्त्र में उन तीखे बाणों का वर्णन है जो शिखाहीन कुमारों की भाँति पुच्छ रहित हैं । मन्त्र में उपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है ।

१८वें मन्त्र में ‘मर्माणि ते वर्मणा छादयामि’ कह कर सैनिक के मर्मस्थलों को वर्म (कवच) से ढांपने की बात आई है।

१९वें मन्त्र में विनाशक शत्रुओं के विनाश का आदेश दिया गया है—यो नः जिधांसति देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु।

इस प्रकार इस सूक्त में युद्धविद्या तथा रणकौशल का मुकम्मल उल्लेख है।

राष्ट्र को समृद्धि दिलाता है कृषि-कर्म

वेद ने राष्ट्र की समृद्धि का प्रमुख कारण कृषि को माना है। कृषि ही वह विद्या है जो अन्नोत्पादन का साधन होने के साथ साथ अन्य व्यवसायों का भी मूल आधार है। उदाहरणार्थ—कपास की पैदाइश वस्त्र-निर्माण का कारण है। इसी प्रकार अनेक उद्योगों और व्यवसायों (दुग्धोत्पादन, पशुपालन) का सम्बन्ध कृषि से है जिसे समस्त उन्नति एवं प्रगति का स्रोत कहा जा सकता है। ऋग्वेद में आये कृषि विषयक सन्दर्भों की यहां समीक्षा की जा रही है। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल का ५७वां सूक्त कृषि का वर्णन करता है। इसके देवता क्षेत्रपति (खेत का स्वामी) शुनः, शुनासीर तथा सीता हैं जो सभी कृषि कर्म से जुड़े हैं। इस सूक्त का छठा मन्त्र कहता है—

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।

यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ४।५७।६

हे ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली हल की लौह निर्मित फाल (वेद में ही नुकीली फाल को ‘सीता’ कहा है), जैसे भूमि हमारे लिए सुखद है उसी प्रकार तू भी कृषि के उत्तम फलों (अन्नों को देने वाली हो। अतः हम तुम्हारी प्रशंसा तथा कामना करते हैं। नवां मन्त्र इस प्रकार है—

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोधिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥

यहां कृषक के मन की कामना का वर्णन है—“हल की

फाल बैलों के द्वारा भूमि को खोदे तथा उसे समतल बनाये । कृषकगण सुख पायें । मेघ समय पर वर्षा करे तथा मधुर जल से खेतों को सिञ्चित करे । इस प्रकार सभी लोग सुख हों । ”

कृषि-कर्म से विपरीत है अक्ष-क्रीड़ा (जुआ खेलना)

जितना विधेयात्मक और रचनात्मक कृषि कर्म है उससे सर्वथा विपरीत द्यूत कर्म है । कृषि में जहां अन्न के हजार दाने बोकर करोड़ों दानों की प्राप्ति होती है वहां जुआ एक ऐसा दुष्कर्म है जिसमें सारा खेल कृत्रिम तथा वज्चना पूर्ण होता है । इसी तथ्य को ध्यान में रखकर ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३४वें सूक्त में कहा गया है—

**अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥**

१०।३४।१३

हे द्यूत व्यसनी, तू जुआ मत खेल, इससे श्रेष्ठ खेती है अतः खेत जोत कर अन्न का उत्पादन कर । इससे तू स्वयं धन्य होगा । इस कृषि से तेरी गौएँ सुखी होंगी तथा तेरी पत्नी प्रसन्न रहेगी । सविता परमात्मा का हमारे लिए यही उपदेश है।

आलोच्य सूक्त में द्यूत कर्म को निन्दित तथा परिवार का विनाशक बताया है इसके अधिकांश मन्त्र जुआरी के स्वगत कथन (Solo-speech) की शैली में हैं । अक्ष क्रीड़ा में हारा जुआरी पश्चात्ताप की ज्वाला में जल रहा है । वह कहता है—“जुआ खेलने के ये पासे मेरे मन में हर्ष उत्पन्न करते हैं और मुझे द्यूतक्रीड़ा के लिए उत्तेजित करते हैं । जब तक मैं इस दुर्व्यसन का शिकार नहीं हुआ था, तब तक मेरी पत्नी का मेरे प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार था किन्तु जब से मैं अक्ष क्रीड़ा के दुश्चक्र में पड़ा हूं, उसका मेरे प्रति व्यवहार रुखा तथा अन्यमनस्कता का हो गया है । पत्नी की बात तो अलग रही। मेरी सास भी मुझ से द्वेष रखती है । वह जानती है कि उसका दामाद बुरे व्यसन में पड़ गया है । हा हन्त ! मेरी पत्नी भी मुझ

से विमुख हो गई है ।”

द्यूत क्रीडासक्त व्यक्ति के पतन की पराकाष्ठा तब देखने में आती है जब जुए में हार जाने के कारण कभी कभी तो उसकी पल्ली को भी अपमानित होना पड़ता है । उसके माता-पिता, भाई-बन्धु सभी उससे नाता तोड़ लेते हैं । इतनी दुर्दशा देखने पर भी व्यसनग्रस्त जुआरी को चैन कहाँ ? उसके लोभ की कोई सीमा नहीं है । जब वह जुआरियों की सभा में जाता है तो उसको यह सुखद भ्रम रहता है कि वह जीत जायेगा । किन्तु होता है उससे सर्वथा विपरीत । वह अपनी जमापूंजी को जुए में गंवा कर हताश होकर घर लौटता है । पाठक ! द्यूत क्रीड़ा का यथार्थ वर्णन सुनें जो यह जुआरी स्वयं करता है । “इन पाशों की विचित्र क्रीड़ा है । कभी ये नीचे आते हैं और कभी ऊपर । हाथ वाले न होकर भी ये पासे खेलने वालों को दबा देते हैं । तप्त अंगार की भाँति खेलने वाले के हृदय को दग्ध कर देते हैं, यद्यपि प्रकृति से ये शीतल हैं ।”^{१९}

जुआरी की पल्ली दुखी रहती है । उसकी माता संतप्त होकर यत्र तत्र व्यर्थ विचरती है । ऋणग्रस्त जुआरी चोर बन जाता है और रात को चोरी करने निकल पड़ता है । जब द्यूत क्रीडासक्त यह व्यक्ति अन्य सदाचारियों की गृहिणियों को सुखी देखता है तो सन्तापित हो जाता है । द्यूत क्रीडाजन्य पाप-सन्ताप को भोगने वाले जुआरी का वेदनायुक्त यह आत्मकथन बताता है कि व्यसन ग्रस्त मनुष्य को कितनी पीड़ा भोगनी पड़ती है । ऋग्वेद का द्यूत सूक्त जुआरी की आत्मवेदना को प्रकट करके ही विराम नहीं लेता । वह मनुष्यों को प्रेरणा देता है कि इस निषेधात्मक दुष्प्रवृत्ति को त्याग कर वह कृषि में अपना मन लगाये—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानाः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥^{२०}

सूक्तान्त में मानव को प्रेरणा दी गई है कि वह लोगों से मैत्री सम्बन्ध जोड़े तथा अन्यों के प्रति प्रेम और उदारता का भाव रखे । यह शुभभावना ही इस सूक्त की फलश्रुति है ।

पाद-टिप्पणियाँ—

१. संस्कारविधि में स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र का भावार्थ पाद-टिप्पणी में देकर लिखा है कि इस प्रतिज्ञा-मन्त्र का उच्चारण वर-वधू दोनों को करना चाहिए ।

२. दम्पती का अर्थ है दम् (अर्थात् घर) पर जिनका स्वामित्व है वे पति पत्नी, दोनों मिल कर दम्पती कहलाते हैं । मनु का आदेश है कि विप्रों (विद्वान् जनों), अपने परिवार के निकटस्थजनों तथा भूत्य वर्ग को भोजन करा कर ही दम्पती (पति-पत्नी) को भोजन करना चाहिए । (अ० ३ श्लो० ११६)

३. अगस्त्य लोपामुद्रा का आख्यान कोई सचमुच की ऐतिहासिक घटना नहीं है, अपितु, जैसा कि स्वामी दयानन्द ने अपने भाष्य में लिखा है यह पति पत्नी का संवाद है । विस्तार के लिए देखें वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप-डॉ० सुरेन्द्रकुमार पृ० १६२ प्रकाशक : सत्यधर्म-प्रकाशन—गुरुकुल कंवरपुरा (राजस्थान) १९९६ ई० ।

४. मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ८०-८३

५. यजुर्वेद के १९वें अध्याय में पितरों का विषय विस्तार से आया है ।

६. यमपितृ-परिचय, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली द्वारा प्रकाशित—१९९० वि० ऋग्वेद के १०/१४, १५, १६, १०१३५, १५४ सूक्तों में यम और पितर का विषय आया है ।

७. सायणादि भाष्यकारों ने इस सूक्त का वास्तविक अभिप्राय न समझकर इसमें किसी रोमशा नाम की नारी का उल्लेख माना तथा इसके कतिपय मन्त्रों के अश्लील एवं यौन भावापन अर्थ किये ।

८. यजुर्वेद (७।१४) में वैदिक संस्कृति को विश्ववारा-'सा प्रथमा संस्कृततिर्विश्ववारा' कहा है । स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्रांश की व्याख्या में लिखा है—"सा प्रथमा आदिमा संस्कृतिः विद्या सुशिक्षा-जनिता नीतिः विश्ववारा सर्वैरेव स्वीकर्तुं योग्या ।" (यजुर्वेद भाष्य) यह प्रथमा अर्थात् संस्कृति वस्तुतः विद्या एवं सुशिक्षा से उत्पन्न नीति

है जो सभी लोगों के द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य है ।

९. नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त् अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीता सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥

१०।३४।९

१०. प्रो० ए० ए० मैकडानल ने इस मन्त्र को अंग्रेजी में इस प्रकार भाषान्तरित किया है—Play not with dice, ply thy tillage; rejoice in thy property, thinking much of it. There are thy cattle, O gambler, there thy wife, this Savitar here, the noble reveals to me.”

A Vedic Reader for Students. p. 194, Ed. 1957

अध्याय ६

ऋग्वेद और पर्यावरण

जैसा कि हम कह चुके हैं वेदों में मानव के हित और अपनी भलाई के लिए जो कुछ कथनीय, वर्णनीय तथा उपदेश करने के योग्य था वह सब मन्त्रात्मक शैली में कहा गया है। विश्व की दृश्य सत्ता हमें प्राणि जगत् तथा प्रकृति के अनन्त विस्तार के रूप में दिखाई देती है। जब हम प्राणिजगत् पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि सूक्ष्मतम कीट-पतंग से लेकर स्थूलतम हाथी पर्यन्त प्राणियों की यह सृष्टि हमारे समक्ष है। वस्तुतः मनुष्य को भी जीवधारियों (Animal) में ही परिणित किया गया है किन्तु अन्य जीवों से उसकी पृथक्ता उसकी विचार-शक्ति (Rationality) के कारण है। इसीलिए तर्कशास्त्र में मानव की परिभाषा देते हुए कहा गया है—Man is a rational animal.^१ अर्थात् मनुष्य एक विचारशील जानवर है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि जड़ सत्ता-प्रकृति भी अपना विविध प्रकार का रूप और वैभव लेकर हमारे समक्ष उपस्थित है। मानव और प्रकृति का परस्पर अनिवार्य सम्बन्ध है। अपने जीवन को सुखद और सुचारू बनाने में हमें पग-पग पर प्रकृति की सहायता और सहयोग की आवश्यकता रहती है। ऋग्वेद में इस प्रकृति और पर्यावरण के अनेक सुरम्य चित्र हमें मिलते हैं। यहां संकेत मात्र से उनका विचार किया जा रहा है।^२ हम यहां मानव जीवन के लिए आवश्यक प्राकृतिक तत्त्वों विषयक वैदिक विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

वायु-तत्त्व—

मानव के जीवन-धारण के लिए सर्वाधिक आवश्यक

तत्त्व वायु है। यदि हम जीवों को शुद्ध, स्वच्छ प्राण वायु न मिले तो एक क्षण के लिए भी हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं होगा। यों तो 'वायु' को वेद में परमात्मा का वाचक माना गया है क्योंकि अनन्त बलशाली होने से वायु भी ईश्वर का एक नाम है^३ किन्तु पृथक् भौतिक तत्त्व के रूप में भी वायु का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। दसवें मण्डल के १६८वें सूक्त का देवता वायु है। चार मन्त्रों के इस लघु सूक्त में वायु के स्वरूप एवं कार्य का चारु वर्णन किया गया है। यथा—

**वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजनेति स्तनयन्स्य घोषः ।
दिवि स्पृण्यात्यरुणानि कृणवनुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१**

वायु की महिमा को देखो, जब यह तीव्र वेग से प्रवाहित होता है तो वृक्षों को भी उखाड़ देता है। द्युलोक को स्पर्श करता है तो मेघों को तिर बितर कर देता है। तूफान के रूप में आकाश को लालिमा युक्त कर देता है। उस समय सारी पृथ्वी धूल से ढंक जाती है।

वायु की तीव्र गति तथा उसके अप्रतिहत स्वरूप को तृतीय मन्त्र में देखें—

**अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न निविशते रुतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विञ्जातः कुत आ बभूव ॥३**

आकाश के मार्ग से चलने वाला यह वायु किसी दिन (या क्षण) ठहरता नहीं है। इसे जलों का सखा कहना उपयुक्त है क्योंकि यह मेघों के वर्षण में कारण बनता है। सामान्य जन को यह पता नहीं चलता कि यह वायु कहाँ से उत्पन्न हुआ है और कहाँ तक फैला हुआ है। अर्थात् वायु मण्डल की सीमा और विस्तार को सामान्य जन नहीं जानते।

अन्ततः वायु के महत्त्व की काव्यमयी घोषणा को सुनें—

**आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्वरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४**

पृथ्वी, जल यहाँ तक कि सम्पूर्ण जीव जगत् का

आधार होने के कारण वायु को देवों का आत्मा (आधार) कहना उपयुक्त है। यह समस्त लोकों का मूल (गर्भ) है तथा यह देव यथानियम चलता है। इस वायु का नाद तो सुनाई पड़ता है किन्तु इसे हम देख नहीं सकते। ऐसे दिव्य शक्तिशाली वात (वायु) देव के लिए हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

वात (वायु) देवता का स्तवन (शुद्ध वायु औषधि है)

शुद्ध वायु का सेवन रोगों का नाश करता है। स्वच्छ वायु औषधि से कम नहीं है। दसवें मण्डल के १३७ वें सूक्त का तृतीय मन्त्र देखें—

आ वात वायु भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥

हे स्वास्थ्यप्रद वायो, आप हमारे लिए स्वास्थ्य प्रदान करने वाली औषधियों को लायें। जो रोग हैं, उन्हें दूर करो। आप सचमुच रोगनाशक औषधि के समान हैं, इस लिए आप दिव्य गुणों वाले देवों के दूत कहलाने के सर्वथा योग्य हैं। वात की महिमा का गान इसी मण्डल के १८६वें सूक्त में है—

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।

प्रण आयूषि तारिषत् ॥१॥

यह औषधि के समान वायु हमारे हृदय के रोगों का शमन करने वाला है। स्वच्छ वायु के सेवन से हृदय रोगों से बचाव होता है। यह वात (वायु) हमारी आयु को बढ़ाता है।

वायु के इस गौरव तथा पुरुषार्थ के कारण अगले मन्त्र में उसे पिता, भ्राता और सखा कहा गया है। वह जीवन का प्रदाता है—

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।

स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

सूक्त के अन्तिम तीसरे मन्त्र का अभिप्राय है कि इस प्राणप्रदाता वायु में अमृत का कोश छिपा है। अर्थात् स्वच्छ वायु के सेवन से हमारे लिए दीर्घायु प्राप्त करना शक्य है।

अतः उससे हमारी प्रार्थना है कि वह हमें सुदीर्घ जीवन प्रदान करे—

**यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ॥३**

वस्तुतः जड़ वायु से प्रार्थना यहाँ अभीष्ट नहीं है । हमारी प्रार्थना उस सर्वशक्तिमान् से है जो वायु को शक्ति तथा प्रवाह प्रदान करता है । वह परमात्मा ही है ।

जल देवता (आपः)

वायु की भाँति जल भी प्राणियों के प्राणधारण के लिए आवश्यक है । जल मल नाशक, शरीर शोधक तथा बलवर्द्धक भी है । वेद ने इसे औषधि तुल्य तथा रोगों का शमन करने वाला बताया है । दशम मण्डल के १३७वें सूक्त का छठा मन्त्र है—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीव चातनीः ।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

यह जल निश्चय ही औषधि है, स्वास्थ्य कारक है, यह रोगनाशक भी है । यों कहें कि सर्वरोगनाशक औषधि है तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी । हमारे लिए यह जल स्वास्थ्यप्रद हो ।

जलाशयों में नदी का महत्त्व

दशम मण्डल के ७५वें सूक्त के देवता नद्यः (नदियां) हैं । इस प्रकरण में तीनों लोकों में आप् तत्त्व की विद्यमानता दिखलाते हुए पृथ्वी पर बहने वाली नदियों के लाभ एवं उपयोग की चर्चा आई है । इस सूक्त के पांचवें मन्त्र में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, असिक्न्या, मरुहृदा, वितस्ता, आर्जिकीया, सुषोमया आदि नाम आये हैं । जो विद्वान् वेदों में लौकिक भूगोल और इतिहास स्वीकार करते हैं उन्होंने तो मन्त्रगत गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज), वितस्ता

(व्यास) आदि नामों को भरतखण्ड की प्रसिद्ध नदियों के अर्थ में लिया है जब कि वेदों की नैरुक्त पद्धति को स्वीकार कर वैदिक शब्दों के यौगिक अर्थ करने वाले स्वामी दयानन्द सदृश विद्वानों ने गंगा, यमुना आदि को शरीरस्थ नाड़ियों का वाचक माना है।^४ दशम मण्डल के भाष्यकार स्वामी ब्रह्ममुनि इस विषय में अपनी सम्पति दर्शाते हुए कहते हैं कि इन शब्दों का सामान्य नदीपरक अर्थ करना भी संगत है।^५ इस विचार के अनुसार गंगा-गमनात् (निरुक्त ९/२५) गमनशील नदी को गंगा कहा जाता है। अन्य नदी में मिलने वाली (यु मिश्रण) होने से नदी को यमुना कहा जाता है। प्रचुर जल वाली नदी सरस्वती, क्षिप्र (शीघ्र) गति से चलने वाली शुतुद्रि तथा विविध प्रकार से गति करने वाली नदी को विपाश या विपाशा कहा जाता है। कालान्तर में नदियों के सामान्य नाम भारत देश की गंगा, यमुना, सतलुज, व्यास आदि विशिष्ट नदियों को दे दिये गये।

रात्रि-प्रशंसन

दशम मण्डल का १२७वाँ सूक्त रात्रि की महिमा का कथन करता है। आठ मन्त्रों के इस सूक्त में रात्रि को सभी शोभाओं से युक्त बताया है—विश्वा अधिश्रियोऽधित । नित्य आने वाली यह रात्रि देवी ऊँचे तथा निम्न सभी प्रदेशों को समान भाव से आच्छादित कर देती है। ‘ज्योतिषा बाधते तमः’ रात्रि के व्यतीत हो जाने पर पूर्वदिशा में जो उषा की ज्योति फैलती है, वह अन्धकार का नाश करती है। इस मन्त्र की कामना है कि इस रात्रि वेला में सभी जीव विश्राम करें—

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्मन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥५॥

जनसमूह, पशु पक्षी सामान्य तथा श्येन पक्षी के तुल्य तीव्रगति वाले प्राणी सभी इस रात के समय में शयन कर अपनी थकावट दूर करें। सूक्तान्त में कहा गया है कि जिस

प्रकार गौ की सेवा घास से की जाती है उसी प्रकार जन सामान्य शश्यासीन होकर रात्रि की उपासना करते हैं। आठवें मन्त्र में रात्रि को सूर्य की कन्या 'दुहितर्दिवः' कहा गया है तथा यह स्तुति रूप सूक्त उसी देवी को समर्पित किया गया है। प्रो० मैकडानल ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—Like kine (cows) I have delivered up to thee a hymn—choose it O daughter of heaven. O Night—like a song of praise to a victor.^६

पाद-टिप्पणियाँ—

१. Deductive Logic by. B. N. Roy.
२. द्रष्टव्य—वेद एवं पर्यावरण—शिवनारायण उपाध्याय कोटा १९९५ ई०
३. "यो वाति चराऽचरं जगद्धरति (जीवयति प्रलयति) बलिनां बलिष्ठः स वायुः जो चराचर जगत् का धारण जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है, उससे उस ईश्वर का नाम वायु है।" सत्यार्थप्रकाश—प्रथम समुल्लास ऋग्वेद (१२११) में वायु परमात्मा का वाचक माना गया है।
४. द्रष्टव्य—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—'ग्रन्थप्रामाण्यप्रामाण्य-विषय' में "इडापिंगला सुषुम्णा कूर्मनाड्यादीनां गङ्गादिसंज्ञास्तीति ।
५. ऋग्वेदभाष्यम् (प्रथम खण्ड) पृ० ६३७,
६. A Vedic Reader for students. पृ० २०६.
७. आज के Veterinary Science के अन्तर्गत पशु चिकित्सा का अध्ययन कराया जाता है।

अध्याय ७

ऋग्वेद : प्रकीर्ण विषय

जीवनोपयोगी विषयों की कोई इयत्ता नहीं है और न इनके विवेचन की कोई सीमा । तथापि वेद संहिताओं के परिचयात्मक विवेचन की इस शृंखला में ऋग्वेद के कथन एवं विवेचनीय विषयों की संक्षिप्त समीक्षा विगत पृष्ठों में की गई है । यहां कुछ स्फुट विषय लेकर उनके बारे में ऋग्वेद के दृष्टिकोण को जानने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

चिकित्सा शास्त्र-

वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा जाता है । आयुर्वेद और चिकित्सा शास्त्र का विस्तार समयान्तर में चरक, सुश्रुत, वाग्भट, अग्निवेश आदि ऋषियों ने किया तथा आयुर्वेद की विभिन्न विधाओं पर प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की । चिकित्सा शास्त्र का मूल वेद-मन्त्रों में देखा जाता है । चिकित्सा की अनेक पद्धतियों का विकास और प्रचलन सहस्रों वर्षों में सम्भव हो सका है । देश, काल तथा वातावरण की विभिन्नता के कारण रोग निवारण तथा स्वास्थ्य-लाभ की अनेक प्रणालियां आज हमारे समक्ष हैं । मनोविज्ञान का नियम है कि रोगी के शरीर पर सहानुभूति पूर्ण हस्तस्पर्श किये जाने से रुग्ण व्यक्ति को सान्त्वना तथा शक्ति मिलती है, उसमें आशा का संचार होता है और रोग से लड़ने की उसकी क्षमतां बढ़ती है । इसी प्रकार चिकित्सक की सान्त्वना पूर्ण वाणी, प्रेमपूर्ण शब्दों से उसके उत्साह को बढ़ाने तथा उसके प्रति सदाशयता पूर्ण व्यवहार उसे नीरोग करने में सहायक होते हैं । दशम मण्डल के १३७ वें सूक्त का अन्तिम (७वां) मन्त्र

इसी स्पर्श चिकित्सा तथा वाक् चिकित्सा का उल्लेख करता है—

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।

अनामयित्तुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥

चिकित्सक अपनी दसों अंगुलियों वाले हाथ से जब रोगी के शरीर का प्रेमपूर्वक स्पर्श करता है तथा जिह्वा से आश्वस्त करने वाली वाणी बोल कर रोगी को दिलासा देता है तथा उसके उत्साह को बढ़ाता है तो उसके उस कृत्य से रोगी को स्वास्थ्यलाभ होता है । सहानुभूति पूर्ण वाणी तथा प्रेमपूर्ण स्पर्श अपने आप में चिकित्सा है ।

रोगनिवारण के लिए औषधि

रोग निवारण में औषधियों की भूमिका निर्विवाद है । अथर्ववेद में नाना औषधियों, उनके प्रयोग तथा उनसे होने वाले लाभों को अनेक सूक्तों में वर्णित किया गया है । ऋग्वेद में भी औषधि विचार प्रसंगोपात् आया है । दशम मण्डल का ९७वां सूक्त ‘औषधिस्तुति’ विषयक है । इस सूक्त का द्रष्टा ऋषि ‘आथर्वणो भिषक्’ अर्थात् अथर्ववेद का ज्ञाता वैद्य है । २३ मन्त्रों के इस सूक्त में औषधियों के गुण, लक्षण, उपयोग, आदि पर विचार किया गया है । इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में औषधियों को ‘पूर्वजाता’ कहा गया है जिसका अभिप्राय है कि सृष्टि के आरम्भ से मानव इनका उपयोग स्वास्थ्यलाभ के लिए करता आया है । इनका प्रयोग वसन्त, वर्षा तथा शरद ऋतुओं में देव संज्ञक वैद्यों द्वारा किया जाता है । ‘शतं वो अम्ब धामानि’ इस मन्त्र में लाभप्रद औषधि को माता (अम्ब) के तुल्य बताया गया है । इन औषधियों की उत्पत्ति तथा उनका कर्तृत्व भी विभिन्न प्रकार का है ।

आलोच्य सूक्त के तीसरे मन्त्र में औषधियों को विभिन्न पुष्पों तथा बीजों से उत्पन्न बताया गया है । पुष्पवती और प्रसूवरी ये औषधियां प्रयोग में आने पर मनुष्य को अश्व का

सा बल प्रदान करती हैं। औषधियों के लाभ को लक्ष्य में रख कर यह मन्त्र उन्हें माता तथा देवी—दिव्य गुणों वाली कहता है।

सप्तम मन्त्र में औषधियों को अश्वावती, सोमावती, तथा ऊर्जयन्ती नामों से वर्गीकृत किया गया है। इनका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—अश्वतुल्य शक्तिदाता, सौम्य प्रभाव वाली तथा बलवर्धक। १८वें तथा १९वें मन्त्र में औषधि को 'सोमराज्ञी' कहा गया है। जिसका अर्थ है सोम रूपी अमृत का सा प्रभाव डालने वाली। ऐसी औषधि को हृदय के ताप व पीड़ा के शमन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। विद्वान्, बृहस्पति के समान योग्य वैद्य से प्रेरित यह औषधि रुग्ण देह में बल (वीर्य) का संचार करती है। बीसवें मन्त्र में कहा गया है कि औषधि सेवन से न केवल द्विपाद मनुष्य अपितु चतुष्पाद पशु भी रोग से छुटकारा पाते हैं। इस कथन से पशु-चिकित्सा का संकेत मिलता है। गाय, बैल, घोड़ा आदि उपयोगी पशुओं के रोगों के निवारणार्थ जो औषधियां प्रयोग में लाई जाती हैं उनका विशिष्ट अध्ययन किया जाता है। इस सूक्त के उपसंहारात्मक २३वें मन्त्र में औषधियों को श्रेष्ठ (उत्तमा) बताया तथा जिन वृक्षों, वनस्पतियों से वे प्राप्त होती हैं उन्हें उनका आश्रय या आधार कहा है।

यक्षमा निवारण—

सामान्य रोगों के निवारण के साथ साथ वेदों में विशिष्ट रोगों के कारण और निवारण के उपाय बताये गये हैं। ऐसे प्रसंग अथर्ववेद में प्रचुर संख्या में हैं। ऋग्वेद में भी कुछ प्रकरण इस प्रकार के हैं। यक्षमा या क्षय राजरोग कहलाता है। किसी समय क्षय असाध्य रोगों के श्रेणी में आता था तथा इस रोग से आक्रान्त व्यक्ति की मृत्यु निश्चित मानी जाती थी। किन्तु वेद ने राजयक्षमा निवारण के भी उपाय बताये हैं। दशम मण्डल के १६१तथा १६३ सूक्त राजयक्ष्मनाशनम् विषयक हैं। १६१वें सूक्त का प्रथम मन्त्र यह घोषित करता है कि

राजयक्षमा से रोगी को यज्ञ चिकित्सा के द्वारा बचाया जा सकता है—

**मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्षमादुत
राजयक्षमात् ।**

वेद का विश्वास है कि यदि वैद्य के परामर्श के अनुकूल रोगी यथोचित औषधि का सेवन करेगा तो वह शत शरद् हेमन्त और शत वसन्त पर्यन्त अर्थात् शतायु होकर वृद्धि को प्राप्त करेगा । इन्द्र, अग्नि, सविता और बृहस्पति नामों वाला परमात्मा उसे दीर्घायु प्रदान करेगा । शतं जीव शरदो वर्धमानः (१६१।४) यह मन्त्रांश इसी भाव को व्यक्त करता है । इसी प्रकार १६३वें सूक्त का प्रथम मन्त्र यह संकेत करता है कि कभी-कभी यक्षमा शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों में प्रविष्ट होकर मारक रूप ले लेता है । किन्तु योग्य वैद्य और उचित औषधि के द्वारा उसे रोगी के नेत्रों, नाक, कान, मुख, मस्तिष्क, तथा जिह्वा से निकाला जा सकता है । यदि विभिन्न अंगों से रोगाणुओं को नष्ट कर दिया जाये तो रोगी का स्वस्थ होना सुनिश्चित है ।

गर्भरक्षा विषयक मन्त्र

मानवी सृष्टि के निरन्तर चलते रहने के लिए नवीन प्रजा (सन्तान) का उत्पन्न होना आवश्यक है । सन्तान के उत्पादन के लिए गर्भाधान तथा गर्भरक्षण की ओर समुचित ध्यान देना चाहिए । दशम समुल्लास के १८४वें सूक्त में गर्भ धारण तथा गर्भ रक्षा के मन्त्र आये हैं । विष्णु, त्वष्टा प्रजापति तथा धाता परमात्मा के ही नाम हैं । इन नामों वाले परमात्मा से प्रार्थना है—आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भ दधातु ते । प्रजापालक तथा धारणकर्ता परमात्मा इस गर्भ को दृढ़ करे ।

दुःस्वर्ज-नाशन विषयक मन्त्र

शारीरिक रोगों से तो मनुष्य को यन्त्रणा मिलती ही है,

सोने के पश्चात् आने वाले दुःस्वप्न उसको चैन की नींद नहीं लेने देते। इन खोटे तथा त्रासदायक स्वप्नों से मुक्ति पाने के लिए शरीर की अपेक्षा मन का स्वस्थ रहना और बुरे विचारों तथा बुरे संकल्पों से बचना आवश्यक है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का १६४वां सूक्त बुरे स्वप्नों से निजात पाने की बात करता है। आत्म उद्बोधन (auto-suggestion) का उसमें विशेष महत्व है) इसीलिए प्रथम मन्त्र में 'अपेहि मनसस्पते' मनुष्य की मानसिक दुर्बलता को दूर रखने के लिए कहा गया है। बुरी भावनाओं तथा बुरे विचारों को मन में न आने देना Negative suggestion है। इसके साथ Positive suggestion के रूप में भद्र भावना जगाना तथा मन में सद् विचारों को लाना भी उतना ही आवश्यक है। इस प्रयोजन को इस सूक्त के दूसरे मन्त्र में बताया गया है—भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युज्जन्ति दक्षिणम् ।

हम भद्र-कल्याणकर विचारों की कामना करते हैं तथा कल्याणकारी चिन्तन को ही वरीयता देते हैं। सोते समय यदि हम स्वस्थ विचारों को लेकर सोयें तो बुरे स्वप्न से बच सकेंगे।

राजाओं के लिए आवश्यक शत्रुनाश

ऋग्वेद के दशम समुल्लास के १६६वें सूक्त में राजपुरुषों तथा शासकों द्वारा राष्ट्र के शत्रुओं के विनाश के उपाय सुझाये गये हैं। यों तो इन मन्त्रों में शत्रुनाश के लिए की जाने वाली परमात्मा से प्रार्थना का उल्लेख है किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि यह कार्य केवल प्रार्थना से ही सम्भव नहीं है। इसके लिए प्रबल प्रयत्न तथा असीमित पुरुषार्थ की आवश्यकता रहेगी। तथापि मन की भावना तथा सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना भी उपयुक्त लाभ देते हैं। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इसी तथ्य को बताता है—हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १०।१६६।१ मेरे शत्रुओं का नाश हो तथा मैं गोपति (भूपति, भूस्वामी बनूँ) शत्रु नाश को क्रियान्वित करने में आत्मबल की

सदा ज्ञरुत रहती है । स्वयं की शक्ति के प्रति मनुष्य का विश्वास उसे शत्रुओं पर विजय दिलाता है—

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।

अथः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥

१०।१६६।२

मैं इन्द्र के समान शत्रु का विनाशक हूँ । किसी में सामर्थ्य नहीं जो मुझे क्षति पहुँचा सके । मैं अक्षत हूँ । अपने शत्रुओं को पांव तले कुचलने की सामर्थ्य मुझ में है ।

गोसेवा के लाभ

गौओं की उपयोगिता वेदों में सर्वत्र वर्णित है । दशम मण्डल का १६९वां सूक्त गायों का विषय वर्णित करता है । यहां गौओं की प्रशंसा की गई है । यह स्पष्ट किया गया है कि गोधृत से होम करना अतीव लाभदायक होता है । गोदुग्ध तथा गोधृत के सेवन से बुद्धि, बल की वृद्धि, रोगों का निवारण तथा क्रामवासना पर विजय आदि लाभ होते हैं । गौ को रुद्र संज्ञक ब्रह्मचारियों की माता, वसु संज्ञकों की पुत्री तथा आदित्य नाम वाले ब्रह्मचारियों की बहिन कहा गया है । ऐसे प्रशस्त विशेषणों वाली गौ सर्वथा अहिंसनीय, अवध्य तथा अखण्डनीया है । ऋग्वेद के ८वें काण्ड के १०१वें सूक्त का १५वां मन्त्र उक्त अभिप्राय को व्यक्त करता है । उपयुक्त मन्त्र इस प्रकार है ।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं स्वचिकतुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥

स्वामी दयानन्द ने गोरक्षा के प्रत्यक्ष लाभ को देख कर उसकी रक्षा और वृद्धि के लिए महान् प्रयत्न किया था । अहन्तत्व्य होने के कारण गौ को वेद में 'अघ्न्या' कहा गया है ।

अध्याय ८

ऋग्वेद में आये कथित आख्यानों की वास्तविकता^१

ऋग्वेद के अध्ययनकर्ता को जिस समस्या का सामना करना पड़ता है वह है, यहां आये अनेक पुरातापाख्यानों की वास्तविक स्थिति क्या है ? वेदों में लौकिक इतिहास तथा अतीत में घटी घटनाओं का वास्तविक वर्णन मानने वाले विद्वानों का कहना है कि ये घटनाएं ऐतिहासिक हैं तथा किसी पुराकाल में घटित हुई थीं । इस प्रकार वेदों में अनित्य इतिहास मानने वालों की यह प्रबल धारणा रही है कि वहां जो व्यक्ति, स्थान, आख्यान आदि के उल्लेख आये हैं वे वास्तविक हैं । अर्थात् इन्हीं नामों के व्यक्तियों, स्थानों तथा घटनाओं का यथार्थ उल्लेख वेदों में तत् तत् स्थानों पर मिलता है । यास्क ने अपने निरुक्त में वेदों में इतिहास मानने वालों का पक्ष रखते हुए स्पष्ट किया है । जो लोग वेदों में सचमुच का इतिहास मानते हैं वे देवासुर संग्राम को दो भिन्न भिन्न जातियों के युद्ध का वास्तविक वर्णन मानते हैं । इसी प्रकार त्वष्टा नामक राक्षस के पुत्र वृत्र और इन्द्र के युद्ध को भी वास्तविक युद्ध का पुरावृतान्त मानते हैं । किन्तु इस मत से स्वयं को अलग करते हुए यास्क कहते हैं कि वैदिक शब्दों का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ करने वाले और वेदार्थ की यौगिक पद्धति को स्वीकार करने वाले नैरुक्त मत के आचार्य आकाशस्थ मेघ को ही वृत्र मानते हैं जिसकी इन्द्र (सूर्य) से लड़ाई मात्र एक रूपक है, वास्तविक नहीं । इसके विपरीत वेदों में देवताओं और असुरों का संग्राम मानने वाले लोग इन्द्र को देवराज तथा वृत्र को उसका प्रतिद्वन्द्वी तथ त्वष्टा नामक असुर का पुत्र मानते हैं ।^२ इसी प्रकार

दाशराज्ञ युद्ध आदि के वर्णन भी वास्तविक आख्यान माने जाते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की सम्मति में वेद लौकिक इतिहास से शून्य हैं। सृष्टि के आरम्भ में प्रदत्त इस ईश्वरीय ज्ञान में विशिष्ट मनुष्यों, उनकी विभिन्न जातियों, कुल-परिवारों, तथा उनके ऐतिहासिक तथा भौगोलिक वृत्तान्तों को तलाशना उचित नहीं है। यहां यह प्रश्न उठता है कि जब वेदों में आये कतिपय व्यक्तिवाचक, स्थानवाचक तथा अन्य प्रकार के नाम लोक में भी ज्यों के त्यों मिलते हैं, तब यह क्यों नहीं मान लिया जाये कि वेदों में सचमुच इन्हीं व्यक्तियों, स्थानों तथा घटनाओं का इतिहास है।^३ इस शंका का समाधान स्मृतिकार मनु ने दिया है। वे कहते हैं—

सर्वेषां तु स नामानि कर्मणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

मनु० ११२१

अर्थात् लोक में जो नाम तथा कर्म प्रचलित हुए वे वेदों से ही गृहीत हैं। महाभारत में भी इसी मत की पुष्टि की गई है।

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः ।

वेदशब्देभ्यः एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः ॥

शान्तिपर्व २३२।२५,२६

वेदों में ऋषियों आदि के जो नाम आते हैं वे सामान्य अर्थ में हैं—किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के अर्थ में नहीं। वेदों से लेकर ही ये नाम लोक में रहने वाले व्यक्तियों को दिये गये। विष्णु पुराण में इस मत की पुष्टि में लिखा है—

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।

वेदशब्देभ्यः एवादौ देवादीनां चकार सः ॥

१५।६४

मीमांसा के आचार्य कुमारिल ने अपने तन्त्र वार्तिक ग्रन्थ में लिखा—

वेद एव हि सर्वेषामादर्शः सर्वदा स्थितः ।
शब्दानां तद् उद्घृत्य प्रयोगः सम्भविष्यति ॥

पृ० २०६

वेद ही सब का आदर्श है । वहीं से शब्दों को लेकर लोक में विभिन्न पदार्थों के नाम आदि दिये गये हैं । इस प्रकार वेद में नित्य इतिहास तो है, किन्तु अनित्य इतिहास नहीं है ।

तथापि वेदों में आये ऐसे आपाततः प्रतीत होने वाले व्यक्ति वाचक नामों तथा उनसे जुड़े प्रसंगों को सचमुच में घटित घटनाएं माना गया तथा उनका विस्तार कर विभिन्न प्रकार के आख्यानों की सृष्टि हुई । 'बृहदेवता' नामक ग्रन्थ के उल्लेखों से भी इस मत की पुष्टि हुई कि मन्त्रों में अनेक राजाओं, ऋषियों, देवासुरों आदि की कथाएं हैं । कालान्तर में सायण तथा अन्य भाष्यकारों ने भी इसी ऐतिहासिक पद्धति को स्वीकार किया तथा ऋग्वेद के आख्यानों को सचमुच की कथा-कहानियों के रूप में प्रचारित किया । इसका एक कारण यह भी रहा कि पुराणों के रचना-काल में वेदों में आये ऐसे प्रसंगों का तत्त्वार्थ न जानकर मात्र शब्दसाम्य से अन्यथा कल्पना कर ली गई थी । आगे हम ऋग्वेद में आये ऐसे प्रसंगों की आलोचना करेंगे तथा यह स्पष्ट करेंगे कि इन प्रकरणों में किसी प्रकार का लौकिक इतिहास नहीं है और इन संदर्भों के आधार पर किन्हीं व्यक्तियों का वेदों में ऐतिहासिक अस्तित्व मानना उचित नहीं है ।

विष्णु देवता वाले मन्त्रों के आधार पर वामनावतार की कल्पना

इन्द्र और अग्नि की बनिस्पत ऋग्वेद में विष्णु की स्तुति के मन्त्र अत्यल्प हैं तथापि पौराणिक काल में अन्य देवताओं की तुलना में विष्णु के गौरव तथा मान्यता में वृद्धि हुई और सृष्टि के सर्जक, पालक तथा संहारक त्रिदेवों में उन्हें प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ । ऋग्वेद में आये विष्णु परक मन्त्रों के

आधार पर सायण तथा अन्य भाष्यकारों ने वामनावतार की कल्पना की है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के २२वें सूक्त में १६ से २१ तक के पांच मन्त्र विष्णु देवता के हैं। आगे इसी मण्डल के १५४वें सूक्त के छः मन्त्र (इतने ही मन्त्र इस सूक्त में है) विष्णु देवता को समर्पित हैं। आश्चर्य है कि वेदों में न तो वामन-विष्णु के उपाख्यान का कोई संकेत है और न विष्णु और वामन के किसी सम्बन्ध की चर्चा है। मात्र 'त्रेधा निदधे पदम्' तथा विष्णु के विचक्रमण (त्रीणि पदा विचक्रमे) जैसे मन्त्रांशों के आधार पर पुराणकारों ने यह कल्पना कर ली कि राजा बलि को छलने के लिए विष्णु ने वामन का रूप धारण किया और तीन डगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (द्यौः, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी) को नाप लिया। १५४वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में आये 'विचक्रमाण्डत्रेधा-उरुगायः' ने भी विष्णु द्वारा तीन पगों में समस्त लोकों को नापने की उक्ति को बल दिया।

यदि हम प्राचीन भाष्यकारों द्वारा किये गये उक्त मन्त्रों के अर्थों को देखें तो ज्ञात होता है कि सायण की भाँति स्कन्द स्वामी ने भी इन मन्त्रों में बलिबन्धन तथा वासुदेव के त्रिपाद विचक्रमण जैसे अर्थ किये हैं, तथापि सभी भाष्यकार इस सरणि पर नहीं चले। वेंकट माधव ने इन मन्त्रों का आध्यात्मिक और सूर्यपरक अर्थ किया है। 'विष्णु' सूर्य का वाचक है। मुद्गल ने भी विष्णु देवता के मन्त्रों का अध्यात्मपरक अर्थ किया और ईश्वर को जगत् का पालक एवं रक्षक बताया। त्रेधा का अर्थ वे ईश्वर के कर्ता, धर्ता और संहर्ता होने में लेते हैं। स्वामी दयानन्द ने इन मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ किया और विष्णु को संसार में सर्वत्र व्याप्त होने के कारण निराकार परमात्मा का पर्याय माना।^४ 'त्रेधा निदधे पदम्' की व्याख्या में उनका कहना है कि परमात्मा ने तीन प्रकार के जगत् (पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा प्रकाशमान् द्युलोक (सूर्य) को बनाया, यही उनका तीन प्रकार से विचक्रमण है। इन मन्त्रों में

पौराणिक उपाख्यान के लिए आधार ढूँढना निर्थक है ।

पाशबद्ध शुनःशेप का आख्यान

‘अजीर्गत के पुत्र शुनःशेप का वरुण द्वारा पाशों से मुक्त किया जाना’ इस मूल सूत्र को लेकर ऐतरेय ब्राह्मण,^५ विभिन्न वैदिक शाखाओं तथा सायण सदृश भाष्यकारों ने अनेक काल्पनिक कथाओं का अम्बार खड़ा कर दिया है । इन सब कथाओं को देने का यहां कोई प्रयोजन नहीं है । इनमें यह कहा गया है कि अजीर्गत के पुत्र शुनःशेप का वरुण के लिए बलिदान दिया जाना था । अपनी मृत्यु को सन्निकट जान कर शुनःशेप ने अग्नि आदि देवों से स्वयं को बचाने की प्रार्थना की । पुनः उसने सर्व रक्षक, न्यायशील वरुण से स्वरक्षा की प्रार्थना की और उसी वरुण ने उसे त्रिविध पाशों से मुक्त किया । वाल्मीकीय रामायण^६, महाभारत^७, विष्णु पुराण, भागवत^८ आदि ग्रन्थों ने इस कथा को अपने अपने ढंग से वर्णित किया है । मौलिक रूप में यह प्रसंग ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के २४वें सूक्त में आया है । इस सूक्त के देवता प्रजापति, अग्नि, सविता, भग तथा वरुण हैं । प्रकारान्तर से ये सभी नाम परमात्मा के हैं और इन पन्द्रह मन्त्रों में संसार के पाशों में बंधे जीव (शुनःशेप) की सर्वशक्तिमान् परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दयालु होकर उसे भवबन्धन से मुक्त करे । विशेषतः वरुण (न्यायशील और सर्वसाक्षी परमात्मा) से जीव (शुनःशेप) की प्रार्थना अत्यन्त भावना प्रवण तथा कारुणिक है जब वह वरुण से अपने को उत्तम, मध्यम और अधम-त्रिविध पाशों से मुक्त करने की प्रार्थना करता है^९ । २५वें सूक्त का १९वां मन्त्र भी इसी प्रार्थना का एक भाग है—

इमं मे वरुण श्रुथी हवमृद्या च मृळय ।

त्वामवस्युरा चके ॥ १२५।१९

हे वरुण देव तू मेरी पुकार को सुन ! मुझ पर आज ही कृपा कर । अपनी रक्षा के लिए ही मैं तुम्हें पुकारता हूँ ।

ईश्वर-प्रार्थना परक इन निर्दोष मन्त्रों का ऐतिहासिक (पौराणिक) शैली के भाष्यकारों ने कितना अनर्थ किया है तथा कैसी कैसी विचित्र कपोल-कल्पित, असंगत, अश्लील तथा मिथ्या कथाएं इन सूक्तों पर मंड दी हैं इसका पता तब लगता है जब शुनःशेष की बलि के इस कथानक से जुड़ी सभी कथाओं को हम देखें तथा उनकी असत्यता को जानें ।^{१०} स्वामी दयानन्द ने इन मन्त्रों का अर्थ प्रजापति परमात्मा परक किया है जो मोक्ष से लौटे जीवों को पुनः माता-पिता का संयोग तथा नया जन्म देता है । उनके विचार में शुनःशेय का अर्थ विद्वान् पुरुष, परमेश्वर अथवा सूर्य भी है । 'वरुण' तो वरणीय श्रेष्ठ परमेश्वर ही है । पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर शुनःशेप को ऐतिहासिक व्यक्ति न मान कर 'प्रकृति के त्रिगुणात्मक अथवा सहस्रों जन्म-मरण के बन्धनों से बंधे सर्वसामान्य व्यक्ति' का प्रतीक माना है । चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार की दृष्टि में शुनःशेप मुमुक्षु तथा जिज्ञासु विद्वान् है जो बन्धनों में पड़कर अपने को मुक्त करने की प्रार्थना वरुण परमात्मा से करता है । निश्चय ही परमात्मा के प्रति जीव के करुणापूर्ण निवेदन के स्वारस्य को न समझ कर अवान्तरकालीन लेखकों ने मूल प्रसंग को विकृत कर दिया है ।

इसी प्रकार ऋग्वेद में आये च्यवन-सुकन्या तथा इन्द्र और दधीचि के प्रसंगों के तत्त्वार्थ को न समझ कर अनेक प्रकार के काल्पनिक कथानक गढ़ लिए गये हैं । ऋग्वेद में कुछ संवादात्मक प्रसंग भी हैं जिनके आधार पर पुरुरवा-उर्वशी, सरमा-पणि, अगस्त्य-लोपामुद्रा तथा यम-यमी के आख्यान गढ़े गये और तत् सम्बद्ध मन्त्रों के विचित्र एवम् असम्भव अर्थ किये गये । यहां इन आख्यानों की विवेचना की जा रही है ।

पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान

ऋग्वेद के दशम मण्डल में राजा पुरुरवा तथा अप्सरा उर्वशी का प्रसंग आता है । इस मण्डल का ९५वां सूक्त इन

दोनों के संवाद का सूक्त है। राजा पुरुरवा उर्वशी के सौन्दर्य पर आसक्त है। कालान्तर में उर्वशी अपने प्रेमी का त्याग कर देती है यद्यपि वह पुरुरवा से गर्भवती थी। यह संवाद इस सूक्त के १८ मन्त्रों में वर्णित है। इनमें ९ मन्त्रों में पुरुरवा की उक्तियां हैं जबकि अवशिष्ट ९ मन्त्रों में उर्वशी का उत्तर है। इस प्रेम कथा का आधार लेकर कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशी' नाटक की रचना की। अन्यत्र वैदिक तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में यह उपाख्यान विभिन्न परिवर्तनों के साथ आया है। रामायण, महाभारत, भागवत, विष्णुपुराणादि में यह कथानक विभिन्न प्रकार से वर्णित है। यदि ऐतिहासिक मत की दृष्टि से देखें तो इन मन्त्रों में पुरुरवा तथा उर्वशी का प्रेम प्रसंग, उनका मिलन तथा विरह का चित्रण हुआ है। पुरुरवा को गन्धर्व तथा उर्वशी को अप्सरा कहा गया है। वैदिक साहित्य में 'गन्धर्व' शब्द मेघ का वाचक है और 'अप्सरा' बिजली का वाचक है। इस प्रकार यह कथा प्राकृतिक व्यापारों-मेघ वर्षण तथा विद्युत् के प्रकाश की प्रतीक बन जाती है। अनेक भाष्यकारों ने इसी प्रतीकात्मक दृष्टि से इन मन्त्रों का अर्थ किया है। स्वामी दयानन्द का ऋग्वेदभाष्य सप्तम मण्डल के आरम्भिक मंत्रों तक ही लिखा गया था अतः उनकी एतद्विषयक सम्मति अप्राप्त है। अन्य व्याख्याकारों ने भी इस प्रसंग की अभिधा प्रधान व्याख्या को असम्भव मान कर इसकी प्रतीकात्मक या आलंकारिक व्याख्या की है। यास्क ने उर्वशी का अर्थ विद्युत् तथा पुरुरवा का अर्थ मेघ किया है। पुरुरवा को मेघ-बहुधा रोरूयते तथा उर्वशी को अप्सरा (विद्युत्) कह कर इनके ऐतिहासिक अर्थ का खण्डन किया।

सरमा-पणि संवाद (ऋग्वेद १०।१०८)

ऋग्वेद में आये इस कथानक का सार इस प्रकार है—पणि संज्ञक असुर देवताओं की गायें चुराकर उन्हें गोपनीय स्थानों पर रख देते हैं। इन्द्र ने सरमा को दूती बनाकर गायों को

खोज लाने के लिए भेजा । सरमा उस स्थान पर पहुंची जहाँ गायें निर्गृहीत थीं । उसने पणियों से संवाद किया और गायों को मुक्त कराया ।” ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में भी इस कथा के बीज पाये जाते हैं । यद्यपि स्वामी दयानन्द ने दशम मण्डल पर भाष्य नहीं लिखा इसलिए इस मण्डल में आये सरमा-पणि संवाद पर उनके विचार जानना सम्भव नहीं है । तथापि प्रथम मण्डल के एतदविषयक मन्त्रों के अर्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वामी जी ने इस प्रसंग में आये सरमा, पणि, इन्द्र आदि का यौगिक पद्धति से अर्थ किया है तथा इन मन्त्रों में इतिहास तलाशने वालों की धारणा को अस्वीकार किया है । उनके अनुसार सरमा विद्या-धर्म का बोध कराने वाली माता तथा राजा की ऋजु नीति का प्रतीक है । इन्द्र का अर्थ सूर्य और पणि से गोपालकों का अर्थ लेना उचित है । पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने सरमा को माता, बुद्धि तथा विद्युत् का प्रतीक बताया है । यह निश्चय है कि यदि मन्त्रों का मात्र शब्दार्थ (अभिधार्थ) किया जाये तो वह असम्भव और असंगत ही होगा । उससे कोई स्पष्ट बोध प्राप्त नहीं हो सकता ।

अगस्त्य-लोपामुद्रा का आख्यान (संवाद)

पौराणिक उपाख्यानों में जिन्हें आदर्श पति-पत्नी बताया गया, उन्हीं अगस्त्य-लोपामुद्रा का संवादमूलक एक सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का १७९वां सूक्त है । स्वामी दयानन्द ने यौगिक पद्धति का अनुसरण करते हुए इसका अर्थ पति-पत्नी के संवाद के रूप में किया है । उनका अभिप्राय है कि ब्रह्मचारिणी कन्या को ब्रह्मचर्य पालन करते हुए वीर्यवान् पुरुष से दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए । पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, पं० भगवद्गत, स्वामी ब्रह्ममुनि तथा पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी स्वामी जी के आशय के अनुकूल अर्थ किये हैं । इसके विपरीत बृहदेवता आदि ग्रन्थों में सूक्तगत मन्त्रों को व्यक्तिपरक संवाद मानकर लोपामुद्रा को कामासक्त नारी के

रूप में चित्रित किया गया है। यह अर्थ प्राचीन वेदार्थ पद्धति के प्रतिकूल तथा अश्लील है।

यम-यमी सूक्त (ऋग्वेद १०।१०)

इस सूक्त के चौदह मन्त्रों का शब्दार्थ देखें तो पता चलता है कि कामभावना वाली यमी (बहिन) की भाई यम के प्रति प्रणय-याचना इस सूक्त में वर्णन की गई है। यमी जब कामासक्त होकर अपने सहोदर भाई यम से यौन सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह करती है तो यम इसे अनुचित तथा मर्यादा के विपरीत मान कर उसे किसी अन्य पुरुष को अपना पति बनाने के लिए कहता है। सायण, उद्गीथ तथा वेंकट माधव ने इस संवाद की ऐतिहासिकता स्वीकार करते हुए यम-यमी को भाई बहिन माना है। स्वामी दयानन्द ने 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत्' इस मन्त्रांश को उद्धृत कर इसका नियोग परक अर्थ किया है।^{११} इस उपपत्ति को यदि स्वीकार किया जाये तो यम-यमी (काम सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ) पति-पत्नी सिद्ध होते हैं। तथापि म्यूर (Mure) तथा मैक्समूलर ने यम-यमी को विवस्वत् (आकाश) और सरण्यू-विद्युत् की सन्तान माना है। पं० शिवशंकर शर्मा ने इन्हें दिन-रात का वाचक माना है।^{१२} इसी प्रकार च्यवन-सुकन्या, दधीचि-इन्द्र आदि के आख्यान भी ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों में आते हैं जिनकी समुचित व्याख्या सुधी समीक्षकों द्वारा की गई है और इनमें विद्यमान वास्तविक तत्त्व को स्पष्ट किया गया है।

वेदों की ही भाँति ब्राह्मण ग्रन्थों में आये इसी प्रकार के इतिहासाभास परक प्रसंगों की आलंकारिक व्याख्या सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने स्वरचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थ प्रामाण्यप्रामाण्य विषय में की है। यहां प्रजापति-दुहिता (शतपथ १०।२।२।४) इन्द्र-अहल्या (शतपथ ३।३।३।४), इन दो ब्राह्मण वर्णित उपाख्यानों के वास्तविक रहस्य को स्पष्ट किया है।

साथ ही ऋग्वेद (१।३२।१२) में वर्णित इन्द्र-वृत्र के कथित युद्ध के अभिप्राय को स्पष्ट कर इसे सूर्य और मेघ का भौतिक संघर्ष बताया है। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने निरुक्त के इस प्रसिद्ध वाक्य को उद्धृत किया—“तत्को वृत्रो ? मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः ।” इस प्रकार मन्त्रों तथा ब्राह्मणों के वास्तविक आशय को न समझ कर पुराणकारों ने जिस प्रकार की असम्भव, अनर्गल तथा मिथ्या कथाओं का सृजन किया, उसके प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा—“इन सत्य ग्रन्थों की अलंकार रूप कथा को छोड़कर छोकड़ों के समान अल्प बुद्धि वालों ने ब्रह्मवैर्त और श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों में मिथ्या कथा लिख रखी है। उनको श्रेष्ठ पुरुष कभी न मानें ।”

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका-ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय

निरुक्त के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यास्क ने ऐतिहासिक सम्प्रदाय से अपना मतभेद स्पष्ट प्रदर्शित किया है। उन्होंने विभिन्न आचार्यों के मतों को उद्धृत कर वैदिक पदों की तरलता को स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ, ‘अश्विनौ’ के बारे में वे लिखते हैं—तत्कावशिवनौ ! द्यावापृथिव्यावित्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके, राजानौ पुण्यकृता-वित्यैतिहासिकाः (१२।१)

ये अश्विनौ (युग्म देवता) कौन हैं ? कुछ आचार्य इन्हें द्यावापृथिवी मानते हैं, जब कि अन्य अहोरात्रि अथवा सूर्य-चन्द्रमा मानते हैं। ऐतिहासिक मत वाले इन्हें पुण्यशील राजा मानते हैं। ध्यातव्य है कि स्वामी दयानन्द ‘अश्विनौ’ के अर्थ अध्यापक-उपदेशक, पति-पत्नी आदि युग्मों से लेते हैं—दयानन्द कृत वेदभाष्य में अश्विनौ के यही अर्थ आये हैं।

आख्यान शैली औपचारिक को बताते हुए वररुचि अपने निरुक्त समुच्चय में लिखते हैं—“औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वा-ख्यानसमयो नित्यत्वविरोधत्वात् । परमार्थेन तु नित्यपक्ष

एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः ।” (पृ० ७१) अर्थात् आख्यानों की यह कल्पना तो मात्र औपचारिक (कहने मात्र के लिए) है । वास्तव में तो नित्य पक्ष ही नैरुक्त आचार्यों को मान्य है । आख्यानों को सत्य मानने से वेदज्ञान की नित्यता के सिद्धान्त की हानि होती है । उसी इन्द्र-वृत्र के युद्ध का स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य यास्क ने लिखा “अपां च ज्योतिश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते । तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति । (२।१६) जल और विद्युत् (ज्योति) के मिश्रण से वर्षा होती है । इसी को युद्ध कहा गया है । यह युद्ध औपचारिक है, वास्तविक नहीं ।

यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सायणादि भाष्यकारों ने इन उपाख्यानों की सर्वत्र वास्तविक इतिहास परक व्याख्या ही की हो, ऐसा नहीं है । उन्होंने भी यत्र तत्र नैरुक्त प्रक्रिया को अपना कर इन कथाओं में निहित शाश्वत इतिहास की ओर संकेत किया है, तथापि पौराणिक प्रभाव के कारण वे इनके सर्वत्र नित्य अर्थ नहीं करते ।

पाद-टिप्पणियां-

१. इस विषय पर विस्तार से जानने के लिए डा० सुरेन्द्रकुमार लिखित ‘वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप’ पठनीय है ।

सत्यधर्म प्रकाशन, गुरुकुल कंवरपुरा से १९९६ में प्रकाशित

२. “तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रो ऽसुर इत्यैतिहासिकाः” निरुक्त अ० ६ खण्ड १६

३. वेदों में राम, कृष्ण, अर्जुन आदि व्यक्ति परक नाम यदु, तुर्वसु आदि क्षत्रिय कुलों, गंगा, यमुना, आदि नदियों तथा च्यवन, दधीचि तथा अगस्त्य आदि ऋषियों के नाम आते हैं, किन्तु इन्हें किसी वास्तविक व्यक्ति, कुल, नदी या ऋषि का नाम नहीं मानना चाहिए। ये शब्द वेदों में सामान्य अर्थ देते हैं तथा प्राकृतिक पदार्थों, घटनाओं आदि का बोध कराते हैं ।

४. तुलनीय-सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में विष्णु की व्युत्पत्ति ।

५. सातवीं पञ्चका में अध्याय-३ ऋग्वेदीय एतरेय ब्राह्मण
६. बालकाण्ड ६१-६२ सर्ग
७. महाभारत-अनुशासन पर्व अध्याय ३।६-८
८. भागवत स्कन्ध ९ अध्याय ७-श्लोक ७-२४ तथा स्कन्ध ९ अध्याय १६ श्लोक २८-३७
९. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्वाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य ब्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

१२४।१५

१०. डॉ सुरेन्द्रकुमार के उपर्युक्त ग्रन्थ में पाशबद्ध शुनःशेष का आख्यान शीर्षक प्रकरण में इस उपाख्यान से उत्पन्न सभी शंकाओं का समाधान किया गया है ।

११. सत्यार्थ प्रकाश-चतुर्थ समुल्लास

१२. निरुक्त (पञ्चम अध्याय पर्यन्त) के व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ने इस प्रकरण की विस्तृत आलोचना कर यह सिद्ध किया है कि यम-यमी सूर्य के कोई देहधारी पुत्र तथा पुत्री नहीं हैं । आलंकारिक पद्धति से इन दोनों का मानवीकरण किया गया है ।

ज्ञानमण्डल काशी से प्रकाशित निरुक्त : आचार्य विश्वेश्वर- १९६६ ई०

अध्याय ९

ऋग्वेद का काव्य-सौष्ठव

भारत की दार्शनिक एवं धार्मिक परम्परा में वेदों को दिव्य काव्य अथवा देव (परमात्मा) का काव्य कहा गया है। अथर्ववेद की प्रसिद्ध उक्ति है—देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।^१ परमात्मा के द्वारा रचित इस शाश्वत दिव्य काव्य को देखो जो न तो मरता है और न जीर्ण होता है। मनुष्य रचित आदि काव्य महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण है जिसे दयालु ऋषि ने क्रौंच मिथुन में से एक के निर्मम वध को देखने से उपजी अपनी करुण वृत्ति के उद्वेक से प्रभावित होकर लिखा था।^२ कालान्तर में जब अनेक काव्यों का सृजन हो गया तो साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के प्रधान तत्त्वों का निरूपण किया तथा बताया कि एक सफल और श्रेष्ठ काव्य में किन तत्त्वों का होना आवश्यक है। साथ ही इस प्रश्न पर भी विचार किया गया कि काव्य का मूल तत्त्व (आत्मा) क्या है? इस प्रश्न के समाधान के लिए अनेक विचार सामने आये और क्रमशः रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति तथा औचित्य को काव्य का मूल तत्त्व मानने वाले विभिन्न सम्प्रदायों का उद्भव हुआ। इनमें रस तथा ध्वनि को प्रमुखता मिली। आचार्य मम्मट ने उस शब्द-अर्थ समूह को काव्य ठहराया जो दोष रहित हो, गुण युक्त हो तथा अलंकारों से युक्त हो या न भी हो।^३ उन्होंने रस को काव्य का मौलिक तत्त्व माना। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में ‘वाक्यं रसात्मकं काव्यम्’ कह कर रस को प्रधानता दी। आचार्य जगन्नाथ ने रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द को काव्य की संज्ञा दी तो आचार्य आनन्द वर्धन ने ‘काव्यस्य आत्मा ध्वनिरिति बुधैः समाप्नात्’^४ कह

कर ध्वनि को काव्य की आत्मा बताया ।

आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य'^६ कह कर काव्य में रीति अर्थात् गुणों के अस्तित्व को प्रधानता दी । उधर आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य^७ की व्यापकता बताते हुए काव्य के सभी अंगों-उपांगों में औचित्य के निर्वाह को प्रधान माना । इसी प्रकार काव्य में अलंकार योजना के द्वारा उसके बाह्य सौन्दर्य की वृद्धि करने वाले आलंकारिक आचार्यों ने काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले अलंकारों का महत्त्व माना तथा अलंकारों के असंख्य (अगणनीय) भेदोपभेदों की चर्चा की । देखा जाये तो वेदों में (विशेषतः ऋग्वेद में) काव्य के उपर्युक्त सभी तत्त्व यथा प्रसंग मिलते हैं । रसों में शृंगारादि नौ रसों को प्रधानता मिली तो भक्त कवियों के काव्य की विवेचना करने वाले कतिपय आचार्यों ने भक्ति को दशम रस की मान्यता दी । मुख्यतः रस नौ ही हैं । भक्ति का शान्त रस में अन्तर्भाव माना जा सकता है ।

यहां हम कतिपय रसों से युक्त ऋग्वेदीय मन्त्रों को प्रस्तुत कर रहे हैं । इससे सिद्ध हो जायगा कि वेदों में विभिन्न काव्य रस यत्र तत्र पाये जाते हैं । सर्वप्रथम—

शृंगार रस—उषा को सम्बोधित ऋग्वेदीय मन्त्रों में शृंगार रस का समुचित निर्वाह हुआ है । उषा को एक ऐसी सुन्दरी नारी के रूप में कल्पित किया गया है जो अपने मनोज्ञ स्वरूप को लेकर संसार में अवतरित होती है । उषापरक मन्त्रों के विश्लेषण से वेद वर्णित सात्त्विक शृंगार के अनेक दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित हो जाते हैं । द्रष्टव्य—ऋग्वेद मण्डल ४ का ५१वां सूक्त । उषा के लगभग २० सूक्त ऋग्वेद में हैं ।

वीर रस—राजाओं द्वारा शत्रु-सैन्य पर आक्रमण तथा पराक्रमी सेनापतियों और सैनिकों द्वारा विजय लाभ के जो प्रसंग ऋग्वेद में आये हैं, वे वीर भावनाओं को उत्तेजित एवम् उद्वेलित करने की क्षमता रखते हैं । युद्ध-क्षेत्र में विजय पताकाएं फहराने तथा योद्धाओं की ललकार का चित्र अंकित करने वाले

प्रसंग वीर रस के उद्भावक हैं। ऐसे युद्ध-प्रसंग अथर्ववेद में भी हैं।

करुण रस—करुणावरुणालय ‘वरुण’ परमात्मा को सम्बोधित मन्त्रों में करुण रस की निष्पत्ति हुई है। संसार के दुःखों, कष्टों, पीड़ाओं तथा त्रितापों से सन्तप्त भक्त करुण स्वर में जब सर्वद्रष्ट्या, सर्वसाक्षी, न्यायकारी वरुण परमात्मा को पुकारता है तो करुण रस की स्नोतस्विनी बह निकलती है। इन वरुण सूक्तों (१।२५ तथा ७।८९) में करुणा की पावन धारा सर्वत्र प्रवाहित हुई है।

अद्भुत रस—जहां आश्चर्योत्पादक कथन चमत्कार पूर्ण शैली में कहा जाता है, वहां अद्भुत रस की स्वतः सृष्टि हो जाती है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्र इसी प्रकार के आश्चर्य का भाव प्रकट करते हैं। अस्यवामीय सूक्त (१।१६४) का वह मन्त्र जिसमें प्रकृति रूपी वृक्ष पर अधिष्ठित दो पक्षियों की चर्चा आती है, अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है।^{१४} जीवात्मा रूपी एक पक्षी का फल को खाना और परमात्मा रूपी दूसरे पक्षी का उसे न खाना हमें आश्चर्य में डालता है। इसी प्रकार के अनेक मन्त्र हैं जिनमें असामान्य वर्णनों के द्वारा अद्भुत रस की सृष्टि की गई है। पुरुष संज्ञक परमात्मा का वर्णन भी विस्मय के भावों को जगाता है।

शान्त रस—दर्शन, धर्म, अध्यात्म तथा नीति तत्त्वों का आगार ऋग्वेद शान्त रस प्रधान है। शान्त रस का स्थायीभाव निर्वेद है। ऋग्वेद के सहस्रों मन्त्र फाटक के मन में निर्वेद का भाव जगाते हैं जिसके फलस्वरूप वह सांसारिक विषय-वासना से मुक्त होकर अनन्त ऐश्वर्य पूर्ण परमात्मा के सान्निध्य को प्राप्त करना चाहता है। संसार को एक ऐसी नदी से उपमित किया गया है^{१५} जो पत्थरों से भरी है तथा जिसे पार करना साधारणतया कठिन माना जाता है। किन्तु भक्त अपने भगवान् की कृपा तथा दया से इसे पार करने में समर्थ होता है। यहां ऐसे सूक्तों की भरमार है जो विचारक को मानसिक उद्घोगों से

निजात दिला कर शान्ति, सौमनस्य तथा आनन्द के भावों में निमज्जित कर देते हैं ।

ऋग्वेद में अलंकार-योजना—

काव्य की शोभा के वर्धक धर्मों को अलंकार माना गया है ।^{१०} ऋग्वेद में जो अलंकार भिन्न भिन्न मन्त्रों में मिलते हैं उनका यथोचित संकेत भाष्यकार स्वामी दयानन्द ने सर्वत्र दिया है । वेदों में अलंकारों की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए स्वामी जी ने अपनी वेदभाष्यभूमिका में ‘अलंकार भेद विषय’ एक पृथक् प्रकरण लिखा है । इसमें उन्होंने उपमा, रूपक और श्लेष इन तीन प्रमुख अलंकारों की परिभाषा, उदाहरण तथा उनके भेदोपभेद आदि की व्याख्या दी है । स्वामी दयानन्द ने यत्र तत्र वाचक लुप्तोपमालंकार का संकेत कर मन्त्रों में इसे उपमा का वह रूप माना है जहां ‘वाचक’ का स्पष्ट उल्लेख नहीं होता । पूर्णोपमा वह कहलाती है जहां उपमान, उपमेय, वाचक शब्द तथा साधारण धर्म, चारों तत्त्व पाये जाते हैं । पूर्णोपमा का एक सुन्दर उदाहरण स्वामी जी ने ऋग्वेद (१।१।१९) से दिया है—स नः पितेव सूनवे उग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये । यहां ‘अग्नि’ उपमेय है, ‘पिता’ उपमान है, ‘सूपायन’ समान धर्म है तथा ‘इव’ सादृश्य वाचक शब्द है । लुप्तोपमा के आठ भेद बता कर स्वामी दयानन्द ने षड्विध ‘रूपक’ का विवेचन किया है । काल को अश्व कह कर ‘कालो अश्वो वहति सप्तरश्मः’^{११} में जिस रूपक की योजना की गई है उसमें कहा गया है कि इस तीव्रगामी अश्व पर वही सवारी कर सकते हैं जो कवि (ज्ञानी) तथा विपश्चित—(बुद्धिमान) हैं ।

अन्य प्रकार के अलंकार भी ऋग्वेद में यत्र तत्र दिखाई देते हैं । सृष्टि-विद्या का प्रकाश करने वाले नासदीय सूक्त में सन्देह अलंकार की छटा ‘नासदासीन्नो सदासीत्’^{१२} आदि वाक्यों में दिखाई देती है तो अन्योक्ति एवं अतिशयोक्ति आदि

अलंकार भी यथाप्रसंग आये हैं ।

काव्य-शैली की विविधता—

आचार्य यास्क ने वेद मन्त्रों में आठ वर्णन शैलियां मानी हैं—स्तुति, आशीः, शपथ, अभिशाप, भावचिख्यासा, परिवेदना, निन्दा तथा प्रशंसा । शौनक के बृहदेवता ने ३६ प्रकार की शैलियां मानी हैं ।^{१३} इन में प्रश्नोत्तर शैली तथा प्रहेलिका शैली भी है । प्रश्नोत्तर शैली के मन्त्र अस्यवामीय सूक्त में ‘पृच्छामि त्वां परमन्तं पृथिव्याः, पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः’ १।१६।४।३४, ३५ आदि में मिलते हैं जब कि प्रहेलिका शैली का प्रसिद्ध मन्त्र ‘चत्वारि शृङ्गः’ ४।५।३ में है यहां एक ऐसे वृषभ का कथन है जिसके चार सींग, तीन पांव, दो सिर तथा सात हाथ हैं । प्रत्यक्षतथा बैल का वर्णन होने पर भी अन्योक्ति अलंकार द्वारा इसे अन्य अर्थों में धराया गया है । मन्त्र इस प्रकार है—

चत्वारि शृङ्गः त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या २ आविवेश ॥

पहेली के चमत्कार से युक्त इस मन्त्र का अर्थ आचार्य यास्क ने यज्ञपरक किया है ।^{१४} इसी शैली के अन्य व्याख्याकारों ने होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा को यज्ञ रूपी बैल के सींग, प्रातः माध्यन्दिन तथा सायंसवन को त्रिपाद, यजमान तथा यजमान पत्नी को दो सिर तथा भूः, भुव, स्वः, महः जनः तपः तथा सत्य—सप्तलोकों को सात हाथ कहा । इस यज्ञ रूपी वृषभ को वेदत्रयी रूपी रस्सी या खूंटे पर बंधा बताया गया है । महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण शास्त्र को महत्त्व देकर इस मन्त्र की अपने ढंग से व्याख्या की तथा नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को इस वृषभ के चार सींग बताया ।

उपर्युक्त विवेचन का सार यही है कि वेदों का काव्य-वैभव अत्यन्त सघन तथा वैविध्य पूर्ण है । इस सन्दर्भ में यदि ऋग्वेद के काव्य-सौष्ठव का विवेचन किया जाये तो वह

बहुआयामी होने के कारण अधिक स्थान की अपेक्षा रखेगा ।

पाद-टिप्पणियाँ—

१. अथर्ववेद-१०।८।३२

२. इस प्रसंग का वाल्मीकि के द्वारा उच्चारित श्लोक इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

बालकाण्ड २।१५

३. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ॥ काव्यप्रकाश

१।४।१

४. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । रसगंगाधर

५. ध्वन्यालोक

६. काव्यालंकार सूत्र

७. क्षेमेन्द्र कृत औचित्य विचार चर्चा

८. ऋग्वेद १।१६।४।२०

९. अशमन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥”

१०।५।३।८

१०. आचार्य ममट ने काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता नहीं मानी जबकि साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने अलंकारों को काव्य की शोभा को बढ़ाने वाला माना है ।

११. कालो अश्वो वहति सप्तरश्मः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।

तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥

यह मन्त्र अथर्ववेद (१९।५।३।१) का है ।

१२. ऋग्वेद १०।१।२९।१

१३. वेदों की वर्णन शैलियाँ—डॉ० रामनाथ वेदालंकार १४ यास्क के अनुसार इस बैल के चार वेद चार सींग हैं, तीन लोक तीन पैर हैं, सृष्टि और प्रलय दो सिर हैं, सात छन्द सात हाथ हैं, वेदत्रयी से त्रिधा बद्ध यह यज्ञ रूपी वृषभ तीनों लोकों में गर्जना करता है तथा यह मर्त्यों (मरणधर्मी मनुष्य) में प्रविष्ट हुआ है ।

अध्याय १०

मानवता को ऋग्वेद का दिव्य सन्देश

दस हजार से अधिक मन्त्रों में ऋग्वेद ने मानव के हित की हजारों बातें कहीं हैं। अन्ततः दशम मण्डल के अन्तिम १९१वें संज्ञानसूक्त के रूप में उसने मानव जाति को निम्न सन्देश दिया—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥

१०।१९।१२

हे मनुष्यो, तुम लोग परस्पर संगत होकर प्रगति-पथ पर आगे बढ़ो, समान वाणी बोलो, तुम्हारे मन समान भाव और समान संकल्प वाले हों। जिस प्रकार तुम्हारे पूर्ववर्ती विद्वान् देवगण अपने अधिकार को प्राप्त कर समान रूप से अपना उद्देश्य प्राप्त करते रहे, वैसे ही तुम भी करो।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

१०।१९।१३

तुम लोगों का विचार एक हो, विचार के लिए तुम्हारी सभाएं एक हों, तुम्हारे विचारों का आधार मन तथा चिन्तन का केन्द्र चित्त भी एक हों। समान विचार रखने के लिए मैं (परमात्मा) तुम्हें अभिमंत्रित करता हूं तथा तुम्हारी प्रार्थना रूपी हवियों में भी एकता तथा समानता देखना चाहता हूं।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

१०।१९।३।४

हे मनुष्यो तुम्हारे मानसिक संकल्प एक से हों, तुम्हारे

हृदय परस्पर मिले रहें । तुम्हारे संकल्पात्मक मनों में एकता हो जिससे कि तुम परस्पर सहयोग से सफलता के सर्वोच्च सोपान पर चढ़ सको । इस प्रकार की मंगल कामना तथा आशीः वाक्यों से परमात्मा का यह अमर काव्य तथा मानवी सृष्टि का आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद समाप्त होता है ।



परिशिष्ट

ऋग्वेद वाड्मय (मूल, भाष्य, टीका, व्याख्या आदि)

	मूल सहिता	प्रकाशक	प्रकाशन काल
१.	ऋग्वेदसहिता : (ऋषि देवता छन्दः स्वरपूर्वकाबहुसहितानुसारेण संशोधिता)	विज्ञानन्द प्रेस लाहौर	१९६६ वि०
२.	ऋग्वेदसहिता ऋष्यादिसंवलिता वैदिक यन्त्रालयस्थ पण्डितैर्बहु सहितानुसारेण संशोधिता)	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर	१९७३ वि० (प्रथम संस्करण)
३.	ऋग्वेदसहिता	आर्यसाहित्य मण्डल, अजमेर	
४.	"	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर सातवलेकर	स्वाध्यायमण्डल पारडी

ऋग्वेद भाष्य

१.	ऋग्वेदभाष्यम् (दयानन्द सरस्वती) (सप्तम मण्डल ६१वें सूक्त के मन्त्र २ तक)	वैदिक मन्त्रालय, अजमेर
२.	ऋग्वेदभाषाभाष्यम् (जयदेव शर्मा विद्यालंकार)	९ खण्डों में प्रकाशित आर्य साहित्य १९३५ ई०
३.	ऋग्वेदभाष्य (स्वाऽब्रह्ममुनि परित्राजक) (दशम मण्डल)	मण्डल, अजमेर वैदिक यन्त्रालय अजमेर
४.	ऋग्वेद (प्रथम मण्डल) बंगला अनुवाद	दीनबन्धु वेदशास्त्री कोलकाता
५.	ऋग्वेद तमिल अनुवाद(एम०आर० जम्बुनाथन)	१९७८ ई०
६.	The Rigveda samhita(सत्यकाम Text and English विद्यालंकार) Translation	वेद प्रतिष्ठान दिल्ली

विभिन्न सूक्तों का पृथक्षः अध्ययन

यमयमी संवाद

- | | | |
|----------------------------------|-----------------------------|----------|
| १. यमयमी सूक्त(पं० भीमसेन शर्मा) | सरस्वती यन्त्रालय | १८९५ ई० |
| | प्रयाग | |
| २. वेद का यमयमी संवाद | प्रियरल आर्ष | १९८४ वि० |
| ३. यमयमी सूक्त | पं० चमूपति | |
| ४. यमयमी सूक्त | पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार | |
| ५. यमयमी सूक्तालोचनम् | पं० भूमित्र शर्मा | |

स्फुट सूक्तों की व्याख्या

- | | | |
|--|----------------------|----------|
| ६. अग्नि सूक्त | श्रीपाद दामोदर | १९६९ वि० |
| | सातवलेकर | |
| ७. ऋषि तर्पणम् दो भाग
(ऋग्वेद १४० तथा
१०४१,४२,४३) | बालमुकुन्द एडवोकेट | १९६७ वि० |
| ८. अथ मरुत्सूक्तम् | बुद्धदेव विद्यालंकार | १९८८ वि० |
| | लाहौर | |
| ९. मित्रावरुण की शिक्षा
(ऋग्वेद ७।६१,६२) | प्रियरल आर्ष | १९३५ ई० |
| १०. वैदिक सूर्यविज्ञान | " | १९९४ वि० |
| ११. वैदिक संगठन सूक्त
(ऋग्वेद १०।१९१) | प्र० गोविन्दराम | कलकत्ता |
| १२. ऋग्वेद का अक्षसूक्त(आचार्य
विश्वश्रवाः) | हासानन्द | |
| | वेद मन्दिर बरेली | १९४२ ई० |
| १३. ऋग्वेद का अक्षसूक्त(भवानीलाल
भारतीय) | आर्यकुमार सभा दिल्ली | |
| १४. इन्द्रोपनिषद् - जगत्कुमार शास्त्री
(ऋग्वेद का इन्द्र सूक्त) | मधुर प्रकाशन दिल्ली | |
| १५. ऋग्वेदीयद्विशतकम् | मेधार्थी स्वामी | १९६३ ई० |
| १६. सप्तसिन्धु सूक्त—समर्पणानन्द सरस्वती वर्णाश्रम संघ मेरठ | | |
| १७. मातृमन्दिर - जगत् कुमार शास्त्री
(ऋग्वेद १०।१५९) | मधुर प्र० दिल्ली | १९६६ |

१८. जीवनप्रभात—जगत्कुमार शास्त्री (ऋग्वेद ७।१४)	मधुर प्र० दिल्ली	१९६७
१९. श्रद्धामाता—जगत्कुमार शास्त्री (ऋग्वेद १०।१५१)	मधुर प्रकाशन दिल्ली	१९७०
२०. वेद का अद्भुत बैल (ऋग्वेद ४।५७।३)	ब्रह्मानन्द जिज्ञासु	२०२७ वि०
२१. ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या	दर्शनानन्द सरस्वती	दयानन्द ट्रैक्ट
		सोसाइटी
२२. ऋग्वेद सारसंग्रह	डा० हरिश्चन्द्र	
२३. स्वराज्य की अर्चना—विक्रमादित्य वसन्त वेदसंस्थान लखनऊ (ऋग्वेद का स्वराज्य सूक्त)		१९८३ ई०
२४. ऋग्वेद का अक्षसूक्त(जगदीश्वरानन्द सरस्वती)	गोविन्दराम हासानन्द	
२५. ऋग्वेद सूक्ति सुधा ..	" ..	
२६. मनुष्य बन — वेदानन्द तीर्थ (१०।५३।६)	वेदप्रकाश माला १	
२७. वैदिक प्रार्थना (५।८२।५)	गंगाप्रसाद उपाध्याय	
२८. वैदिक ईशवन्दना (ऋग्वेद ७।८६,८९)	ब्रह्मुनि परिव्राजक	

ऋग्वेद शतक

२९. ऋग्वेद शतक—अच्युतानन्द सरस्वती	आर्य प्रा० सभा लाहौर
३०. ऋग्वेद मञ्जरी—जगत्कुमार शास्त्री	साहित्य मण्डल दिल्ली
३१. ऋग्वेद शतक—सं० जगदीश विद्यार्थी	गो० हा०
(दयानन्द भाष्य)	
३२. ऋग्वेदीय अध्यात्म शतक(भवानीलाल	वि० गो० हा०
भारतीय)	
३३. ऋग्वेद सौरभ—प्रियब्रत दास	वै० अ० प्र० भुवनेश्वर
(उडिया)	
३४. ऋग्वेद भावार्थयु—केशवार्य शास्त्री	
(तेलगु)	

ऋग्वेद विषयक विवेचनात्मक ग्रन्थ

१. सदाकृत ऋग्वेद—पं० लेखराम • (उर्दू)	डी० ए० बी० कालेज १९७७ वि० शोध-समिति, लाहौर
२. ऋग्वेद पर व्याख्यान—पं० भगवद्त	सत्यप्रतशर्मा आगरा १९८५ वि०
३. ऋग्वेदालोचन—नरदेव शास्त्री	आर्य साहित्यमण्डल २००६ वि०
४. ऋग्वेद की ऋक्संख्या (युधिष्ठिर मीमांसक)	अजमेर
५. „ (संस्कृत हिन्दी भाष्ययुता)	रामलाल कपूर ट्रस्ट २०३० वि०
६. ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात	शिवपूजनसिंह २००७ वि० कुशवाहा
७. ऋग्वेद के ऋषि	हरिशरण १९५५ ई०
८. ऋग्वेद रहस्य—अलगूराय शास्त्री	सिद्धान्तालंकार
९. ऋग्वेद का मणि सूत्र(समर्पणानन्द सरस्वती)	आर्य प्र० सभा उ० प्र० १९५१ ई० समर्पण शोध-संस्थान
१०. ऋग्वेद मण्डल मणिसूत्र (सत्यानन्द वेदवाणीश)	ज्ञानचन्द्र ट्रस्ट दिल्ली
११. वेद की इयत्ता	स्वामी स्वतन्त्रानन्द
१२. ऋग्वेद के दशम (बिहारीलाल मण्डल का रहस्य शास्त्री)	गो० हा० १९७७ ई०

